सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई–283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 53 : अंक : 5
अगस्त 2020

प्रकाशन तिथि : 01.08.2020
मूल्य – एक प्रति : 20/–, द्विवार्षिक : 360/–

अमृतकण

आ यद्वामीय चक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।।

(ऋग्वेद)

हे परस्पर स्नेहभाव और विरोध रहित स्त्री-पुरुषो। दोषं दृष्टि से मुक्त बनो। हम विद्वान लोग, आप और अन्य सब लोग मिलकर स्वराज्य की रक्षा के लिए सब प्रकार से प्रयत्नशील रहें।

◆ ◆ ◆

काव्यशास्त्रविनोदेन कालोगच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।

(हितोपदेश)

बुद्धिमानों का समय काव्य, शास्त्र, साहित्य का अध्ययन कर मनोरंजन में व्यतीत होता है, परन्तु मूर्ख यानि बुद्धिहीन लोगों का समय बुरी आदतों में, सोने में और कलह करने में व्यतीत होता है।

◆ ◆ ◆

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हि नस्त्यात्मात्मानं ततो याति परां गतिम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

जो व्यक्ति परमात्मा को सर्वत्र और प्रत्येक जीव में समान रूप से मौजूद देखता है, वह अपने मन के द्वारा अपने आपको भ्रष्ट नहीं करता। इस प्रकार वह दिव्य गन्तव्य को प्राप्त कर लेता है।

◆ ◆ ◆

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च।।

(चाणक्य नीति)

घर से बाहर निकले हुए की सच्ची मित्र विद्या होती है, घर के अन्दर शीलयुक्त पत्नी मित्र होती है, रोगी के लिए औषधि मित्र होती है और मरने वाले का मित्र उसका धर्म (धर्माचरण) होता है। इसलिए धर्म का पालन अधिक से अधिक करना चाहिए।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 53 | अगस्त 2020 | अंक : 5

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे
दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।
(अथर्व 12/1/45)

अर्थात्

अनेक प्रकार से विभिन्न भाषा बोलने वाले और विविध धर्मों को मानने वाले लोगों को एक परिवार के तुल्य धारण करने वाली पृथ्वी निश्चल एवं शान्त-स्थिर गाय की तरह मुझे ऐश्वर्य की सहस्त्रों धारायें प्रदान करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	10
4.	दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता- डॉ. विष्णुदत्त शर्मा	13
5.	भगवान् सूर्य और उनकी लीला-कथाएँ- कल्याण से साभार	16
6.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग- स्वामी विवेकानन्द	23
7.	गुरु पूर्णिमा का पर्व हर्ष व उल्लास के साथ मनाया गया	25
8.	ध्यानयोग एवं आत्मसाक्षात्कार- श्री सूरजप्रकाश शर्मा	26
9.	हंसविद्या की महत्ता एवं उसकी प्राप्ति के साधन- श्री पूर्णचन्द पन्त	31
10.	नाड़ीचक्र और सूर्य- श्री रामनारायण त्रिपाठी	35

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख—

समर्पण का फल

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अखिलात्मा भगवान ने गीता में समर्पण की बात बार–बार समझाई है। भगवान कहते हैं **'मन्मना भव'** मेरे में मन वाला बनो। भगवान के चिन्तन से हम भगवान के मन वाले हो जायेंगे। छोटी शक्ति बड़ी शक्ति में लय हो जाया करती है। हमारे नासिका रन्ध्रों से निकलने वाले परमाणु भगवान कृष्ण के परमाणुओं के अन्दर मिल जायेंगे। जिस समय हमारे परमाणु भगवान कृष्ण के तेज के अन्दर लय हो जायेंगे तो हमारा मन उनका मन बन जायेगा। हमारे मन में वही विचार आने लगेंगे जो भगवान चाहते हैं। यही है **'मन्मना भव'**। मन्मना भव हो जाने पर **'मामेवैष्यसि'** अर्जुन तू मुझे ही प्राप्त करेगा–मेरे पास ही पहुँच जायेगा। यह मैं सत्य कह रहा हूँ क्योंकि तू मेरा प्यारा है। **'सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'** सर्व कर्मकाण्डों को छोड़कर मेरी शरण हो जाओ। तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। चिन्ता मत कर। श्री भगवान ने पहले भी **'यद करोषि यदश्नासि'** आदि वचनों से आत्मसमर्पण की बात अर्जुन को समझाई। हमारे प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार हर व्यक्ति भगवान को भोग लगाकर ही इसे प्रसाद रूप में ग्रहण करता है। ऐसा करने से उसके अन्दर खुदी का भाव मिट जायेगा। गुरुदेव के चरण कमलों में जिनका समर्पण है। उनका समर्पण परासत्ता का समर्पण है। वह किसी भी प्रकार से रहे निष्काम कर्मयोग को प्राप्त हो जायेगा और शनैः शनैः समाधि को प्राप्त हो जायेगा।

श्री प्रभु के चरण–कमलों से सम्बन्धित एक घटना बतलाता हूँ। नेपाल के जंगलों में एक बूढ़ा व्यक्ति श्री प्रभुजी की खूब सेवा किया करता था। उनके साथ में हरिहरानन्द तथा अन्य गुरुभाई भी रहा करते थे। वे लोग उस बूढ़े से ईर्ष्या किया करते थे। जो ज्यादा सेवा करता है उस से अन्य लोग चिढ़ते हैं यह स्वाभाविक बात है। उन्होंने सोचा–हम इस बूढ़े को ज्ञानगिर अघोरी के पास शीशगिर की ओर भेज देंगे वहाँ ज्ञानगिर इसको यन्त्र पर चढ़ा देगा तथा खा लेगा और हमें सेवा का मौका मिल जायेगा। इस भावना से वे उसे वहाँ भेजना चाहते थे। मनुष्य अपनी बुद्धि से सोच लेता है कि प्रभुजी को इस बात का क्या पता चलेगा। बूढ़ा अघोरी द्वारा मारा जायेगा और हमें सेवा का मौका मिलेगा। श्री प्रभुजी हम पर खुश हो

जायेंगे। उन लोगों ने चालाकी की। श्री प्रभु जी घट–घट के जानने वाले हैं। दण्डी स्वामी और अन्य लोग कहने लगे–कन्दमूल तो शीशगिर में अधिक मिलते है परन्तु वहाँ ज्ञानगिर अघोरी रहता है वह आदमी को खा जाता है। वह बूढ़ा कहने लगा प्रभुजी–वहीं पर मैं जाऊँगा और कन्दमूल खोद लाऊँगा। प्रभुजी कहने लगे–नहीं बेटा–तुम दूसरी दिशा में चले जाओ लेकिन बूढ़े ने उधर ही जाने का हठ किया। बूढ़ा वहाँ चला गया–वहाँ उसे अघोरी मिल गया–ज्ञानगिर उसको देखकर सोचने लगा–पलापलाया शिकार है दो–तीन दिन भोजन तो हो ही जायेगा–ज्ञानगिर यह सोचकर उसे यन्त्र पर चढ़ाने ही वाले थे कि इतने में आकाशवाणी होती है–ज्ञानगिर! पलापलाया शिकार है दो तीन दिन का भोजन हो ही जायेगा। किन्तु यह देख लेना यह किसका बालक है सोच–समझकर हाथ लगाना। ज्ञानगिर ने देखा–कि श्री प्रभु जी का अखण्ड मण्डलाकार तेज है और उनका हाथ उसके सिर पर है। उसकी हिम्मत नहीं हुई उसे खाने की। अघोरियों का नियम होता है या तो वे शिकार को खा लेते हैं और यदि ऐसा न कर सके तो उसे वरदान देते हैं। अघोरी ने बूढ़े से कहा–तेरे कर्म तो बहुत ऊँचे हैं। तेरे रक्षक तो सर्व शक्तिमान हैं–मार हम तुझे सकते नहीं। अब तू वर माँग हमारा यही नियम है। अब बोल तू क्या चाहता है? बूढ़ा कहने लगा। मैं तुझ से क्या माँगूगा? तू माँग मुझसे–तू क्या चाहता है? तू स्वयं मांगता है। ज्ञानगिर को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसके शरीर में सिद्धियों के स्थानों को देखने लगा कि क्या कोई सिद्धि भी इसके पास देने वाली है। उसने देखा कि कोई सिद्धि तो नहीं है किन्तु फिर भी प्रभु जी के तेज की ओर आकृष्ट हुआ। देखा–वे कह रहे हैं बेटा–तू इसके लिये मुख से जो भी कहेगा वही हो जायेगा। तू दण्ड देना चाहेगा तो दण्ड मिल जायेगा तू इसे योगी बनाना चाहेगा तो यह योगी हो जायेगा–तेरे मुख से निकलते ही तत्क्षण वैसा ही हो जायेगा। इतने में ज्ञानगिर–उससे कहने लगा–यदि तू कुछ भी नहीं मांगेगा–तो भी मैंने तुझे वाकसिद्धि दे दी। बूढ़े ने कहा–नहीं, मुझे तेरी वाकसिद्धि नहीं चाहिये। किन्तु अघोरी कहने लगा–मैंने अपने नियम से यह सिद्धि तुझे दे ही दी है। यह बूढ़ा लौटकर श्री प्रभुजी के पास आ रहा था कि रास्ते में उसे गुरुभाई मिल गये और कहने लगे। चौरासी लाख मोल लाया कि नहीं। तू किसी को वरदान देगा किसी को शाप देगा इससे तू अवश्य ही चौरासी के चक्कर में पड़ जायेगा। बूढ़ा बेचारा सरल था। कहने लगा–अच्छा ऐसा होगा। उसने कन्दमूल का गट्ठर उन्हें देते हुये कहा–अच्छा भाई! श्री प्रभुजी के चरणों में मेरी यह अन्तिम सेवा है। मैं अब वाकसिद्धि और संकल्पसिद्धि को खोने के लिये जाता हूँ। उन्हें खोकर दूसरा जन्म लेकर 10–15 साल में फिर श्री प्रभुजी के चरणों में पहुँच जाऊँगा। बस! यह मेरी अन्तिम सेवा श्री प्रभुजी के

चरणों में अर्पित कर देना। वे लोग श्री प्रभुजी के पास पहुँचे और बूढ़े की सारी बात श्री प्रभुजी को बता दी। प्रभुजी सोचने लगे–हमारा बच्चा इस तरह से मर जायेगा। वह बूढ़ा वहाँ से चला गया था और अपनी वाक्‌सिद्धि को खोने के लिये पहाड़ की चोटी से गिरकर शरीर को नष्ट करने का विचार कर लिया। पहाड़ की चोटी पर पहुँच कर जब वह नीचे को गिरने ही वाला था कि श्री प्रभुजी वहीं प्रकट हो गये और कहने लगे–तू अपना शरीर क्यों नष्ट करना चाहता है! वह कहने लगा–प्रभुजी! वाक्‌सिद्धि को नष्ट करने के लिये एवं पुण्य–पाप से बचने के लिये ऐसा कर रहा हूँ। श्री प्रभुजी कहने लगे–उसने सिद्धि दी–हमने ले ली। हमने स्वयं छीन ली है। तेरे कहने से किसी का न भला होगा न बुरा–चाहे किसी का कहकर देख ले। हम जो चाहेंगे वह होगा, तेरे चाहने से कुछ नहीं होगा। श्री प्रभुजी उस पर प्रसन्न हो गये और कहने लगे। हमने तुझे पूर्ण भूत जयी सिद्ध बना दिया। एक बार कृपा की सिद्ध योगी बना दिया। वह बूढ़ा उस पहाड़ से फिर प्रभु जी के स्थान पर पहुँच गया। गुरुभाई सोचने लगे–यह फिर आ गया। श्री प्रभुजी कहने लगे–अरे तुम लोग इसके लिये क्या सोच रहे हो? यह तो सिद्ध हो गए है। यह अमर हो गया है। वे लोग कहने लगे। प्रभुजी! इस की वाक्‌सिद्धि! प्रभुजी कहने लगे–वह तो हमने छीन ली है। यह फल होता है गुरुदेव में आत्म समर्पण का! श्री प्रभुजी ने उसे पूर्ण सिद्धयोगी बना दिया। वह भी शीशगिरि के पहाड़ पर समाधिस्थ है।

भय बुद्धि की हार है

भय हमारी बुद्धि की हार है, हमारे आत्मविश्वास की हार है। मनुष्य सृष्टि का श्रृंगार है, किन्तु मनुष्य तो सृष्टि की निकृष्टतम वस्तु है। भय एक मिथ्या, काल्पनिक भ्रम है। आत्मविश्वास में अनन्त शक्ति है। वह आपको ऊँचे शिखर पर ले जा सकती है। आत्मविश्वास को जगाना शुरू करें और कुछ ही समय में आप में परिवर्तन आ जाएगा। आत्म–विश्वास आस्तिकता का प्रथम चरण है, आत्मविश्वास का अभाव नास्तिकता का प्रारम्भ है, " हाँ, हाँ मैं क्या नहीं कर सकता ? मैं अवश्य कर सकता हूँ और सफल हो सकता हूँ। मैंने बड़े–बड़े काम किये हैं, आगे भी कर दूँगा। प्रभु ने मेरा हाथ पकड़ रखा है, प्रभु कृपा मेरे साथ है। " भय की सीमा नहीं होती है, कहाँ तक भय मानें।

सम्पादकीय–

अध्यात्म योग–अपरोक्षानुभूति का विषय है।

–आचार्य (डॉ.) दासलाल जी महाराज

भौतिक विज्ञान की भाँति योग विद्या का जीवन में प्रयोग किया जाता है। इसका हम अपने जीवन में प्रयोग करके इसका दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति रूप लाभ ले सकते हैं। इसका जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। इस कारण से ही विद्वानों ने योग को (Science of Soul) कहा है। आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म विषय है इससे सूक्ष्म कोई वस्तु नहीं होती। गीता में भी भगवान् ने नवें अध्याय में इसकी महत्ता को स्पष्ट करते हुये कहा है यह राजविद्या है अर्थात् सभी विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ है इसलिये यह राजविद्या है। इसका जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है इसलिये 'प्रत्यक्षावगमम्' कहा है। दूसरी सबसे बड़ी बात है योग अविनाशी है अतः इसे 'अव्यय' शब्द से अभिहित किया गया है। सभी दर्शनशास्त्रों में योग ही सर्वाधिक प्रत्यक्षीकरण का विषय है। योग एवं वेदान्त दोनों ही शास्त्र अनुभूति के शास्त्र हैं। कुछ लोग वेदान्त दर्शन को ज्यादा श्रेष्ठ मानते हैं योग को वेदान्त दर्शन से हल्का मानते हैं। इस विषय में मुझे एक घटना याद आ रही है जो श्री गुरुदेव से सम्बन्धित है। जिन दिनों गुरुदेव श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश रहा करते थे उन दिनों उनका परिचय दर्शन–महाविद्यालय के प्राचार्य से हुआ। इन्होंने आचार्य जी से कहा–हमारी एक मासिक योग से सम्बन्धित पत्रिका निकलती है उसमें यदि कोई लेख छपने के लिये दें तो लोगों को लाभ होगा। उन्होंने बड़े रूखे शब्दों में कहा योग पर क्या लिखना है वेदान्त पर लिखना होता तो लिखते योग में लिखने को कुछ विशेष है नहीं। श्री गुरुदेव जी उनकी बातों को सुनकर मन ही मन सोचने लगे कि इतने बड़े विद्वान को भी योग के सिद्धान्तों में रुचि नहीं है। शायद यह इन सिद्धान्तों के विषय में जानते ही नहीं हैं। अस्तु। गुरुदेव योग को ही सब दर्शनों का साध्य विषय मानते थे। वस्तुतः वेदान्त और योग दोनों का लक्ष्य एक ही है। योग कैवल्य को लक्ष्य मानता है जिससे सम्पूर्ण दुःखों की निवृत्ति हो जाती है और योगी अपने लक्ष्य आत्मा की स्वरूप स्थिति को पा जाता है जो जन्म–मृत्यु के दायरे से उसे सदा के लिये छुड़ा देता है। वेदान्त का लक्ष्य अद्वैत–सिद्धि है। द्वैत की पूर्णतया समाप्ति।

महर्षि कपिल का सांख्य दर्शन सबसे प्राचीन माना जाता है। गीता में भगवान् कहते हैं –

लोकेऽस्मिन द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ

ज्ञानयोगेन सांख्यानाम् कर्मयोगेन योगिनाम्।

हे अर्जुन! मैंने प्राचीन काल में ही दो प्रकार की निष्ठाओं का वर्णन किया है। वे हैं सांख्य वालों का ज्ञान योग तथा योगियों का कर्म योग ये दो प्रकार की निष्ठा है। यहाँ पर सांख्य वालों का जो ज्ञान योग बताया गया है यह ज्ञान योग ही बाद में वेदान्त के रूप में प्रचलित हुआ है। कर्मयोग तो योगियों की निष्ठा है ही। वैसे भी दर्शन शास्त्र में सांख्य और योग को एक ही विषय में माना जाता है। सांख्य सिद्धान्त परक शास्त्र है और योग क्रिया परक शास्त्र है।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति सः पश्यति। *(गीता 5/5)*

सांख्य और योग को जो एक ही मानता है वह ही यथार्थ जानता है। जबकि बाल–बुद्धि वाले लोग सांख्य और योग को अलग–अलग मानते हैं। ऋषिकेश में शिवानन्द आश्रम से एक मासिक पत्रिका निकलती थी। उसका नाम था योग वेदान्त। इसमें योग और वेदान्त के सिद्धान्तों का बड़ा सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है।

उपनिषदों में ज्ञान और कर्म दोनों को ही मुक्ति का साधन माना है। वेद वचन है–

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।

अविद्या अर्थात् कर्म के द्वारा मृत्यु को लाँघकर विद्या से अमृतपद या मोक्ष की प्राप्ति होती है। आगे भी लेख है जो इस बात को और पुष्ट करता है।

न केवलेन योगेन प्राप्यते परमं पदम्।

ज्ञानं तु केवलं सम्यगपवर्गप्रदायकम्।।

केवल योग से ही परम पद की प्राप्ति नहीं होती है ज्ञान भी मुक्ति में सहायक होता है। आगे भी कहा है–

समाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां–गति।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां लभते परमं पदम्।।

अर्थात् जिस प्रकार से पक्षी दोनों पंखों की मदद से उड़ने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार से ज्ञान एवं कर्म से परम पद की प्राप्ति होती है।

योग एवं वेदान्त में दुःखों का मूल कारण अविद्या ही माना है। इसी का समूलोन्मूलन करना दोनों का लक्ष्य है। अविद्या का स्वरूप एक जैसा दोनों का मान्य है। अविद्या को वेदान्त में माया नाम से भी कहा जाता है। अविद्या के योग दर्शन में चार पर्व बताये हैं। पहला है अनित्य वस्तु को नित्य समझ लेना, दूसरा है अपवित्र को पवित्र मान लेना, तीसरा है दुःख

को ही सुख समझना। चौथा है अनात्म वस्तु को आत्मा समझ लेना। यह अविद्या का स्वरूप है जो दोनों को मान्य है। योग का सूत्र है–

अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्म–ख्यातिरविद्या।

(योग सूत्र 2/5)

अविद्यादि पञ्च क्लेश ही विपर्यय कहलाते हैं–

क्लेशाः इति पञ्च विपर्ययाः।

(व्यासभाष्य 2/3)

क्लेश से कर्म तथा पुनः कर्मफल की व्यवस्था के कारण यह परम्परा चली आ रही है। यही संसार चक्र है।

योग साधना में वैराग्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है इसके बिना वृत्तियों का निरोध असंभव है। यह वैराग्य भी दो प्रकार का है। पहला है–

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।

(यो. द. 1/15)

अर्थात् इस लोक के सुन्दर भोग्य पदार्थ खानपान, स्त्री तथा अन्य वैभव की आसक्ति का त्याग अपर वैराग्य है। वेद शास्त्र तथा पुराणों में वर्णित स्वर्गीय भोगों के प्रति भी अनासक्ति का होना इसी वैराग्य का अंग है। दूसरा पर–वैराग्य है। विवेक–ख्याति से उत्पन्न ज्ञान को ही हेय मानकर धर्ममेघ समाधि को पाना तथा असम्प्रज्ञात में आरूढ़ होना इस पर–वैराग्य का लक्ष्य है। इसी से ही निर्बीज समाधि की परिपक्व अवस्था मिलती है। वेदान्त भी वैराग्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारता है। नश्वर पदार्थों के प्रति पूर्णरूप से अनासक्त रहना वेदान्त को अभीष्ट है। अनात्म वस्तु में राग का अभाव ही वैराग्य को पुष्ट करता है। वेदान्त में माया का वर्णन अधिक हुआ है। इसे योग में प्रकृति कहते हैं। विवर्तवाद माया का ही रूप है। यही जगत का मिथ्यात्व है। योग में भी 'विपर्यय' को मिथ्या ज्ञान कहा गया है। **'विपर्ययो मिथ्याज्ञानं अतद्रूप–प्रतिष्ठित्'**–*(यो. द. 1/8)*

अर्थात् मिथ्याज्ञान उसे कहते हैं जो वस्तु जैसा मालूम पड़ रहा है वह वैसा नहीं होता है। अज्ञानता से रज्जू में सर्प का बोध होना ही मिथ्या ज्ञान है। रज्जू में सर्प का भान होता है किन्तु प्रकाश के प्रकट होने पर वह रज्जू ही होता है सर्प नहीं। यह भी योग में चित्त की एक वृत्ति है जो हेय है, निराकरणीय है। योग शास्त्र में चित्त की असंख्य वृत्तियों को रोकने का उपदेश हुआ है। इन वृत्तियों को प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति के नाम से पाँच श्रेणियों में बाँटा है। इन पाँचों वृत्तियों के क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो भेद और बन जाते

है। क्लिष्ट वृत्ति दुःख का जनक है जबकि अक्लिष्ट ज्ञान, वैराग्य, विवेक, ख्याति की ओर ले जाने वाली वृत्ति है जो उपादेया है। उपकारक है लाभकारी है।

वेदान्त मतावलम्बी विचार पर ज्यादा जोर देते हैं उनका कहना है कि विचार ही मुख्य साधना है किन्तु विचार कैसे किया जाये इस पर दो सूत्र दृष्टव्य हैं एक तो सूत्र है **'आसीनः सम्भवात्'** (ब्र. सू. 4/1/8), दूसरा सूत्र है **'ध्यानाच्च'**।

पहले सूत्र के द्वारा बताया गया है कि उचित आसन में स्थिरता पूर्वक देर तक बैठने का अभ्यास किया जाये। दूसरा सूत्र है–'ध्यानाच्च' (ब्र.सू. 4/1/7)। अर्थात् स्थिर शरीर होकर के ध्येय का ध्यान करना चाहिये। यह दोनों सूत्र योग की प्रक्रिया को ही पुष्ट करते हैं। विचार भी धारणा का ही रूप है। जब तक एक ही प्रकार का विचार धारा प्रवाह से चल कर ध्यान की दृढ़ अवस्था तक न पहुँच जाये तब तक अभीष्ट लाभ व विवेक ज्ञान नहीं हो पाता। इसे ही निदिध्यासन् कहा गया है।

समाधि लाभ का प्रत्यक्ष फल होता है चित्त का ध्येय में पूर्ण एकाकार होना तथा व्युत्थान में सिद्धियों का स्वतः प्रकट रहना। सिद्धियाँ आत्म–स्थिति की सूचना देती हैं। उपलब्धियों को बताती हैं साधना की। यह स्वतः ही प्रकट रहती हैं इनके लिये अलग से कुछ करना नहीं होता। कुछ वेदान्त वादी कहते हैं सिद्धियाँ कुछ नहीं होती हैं इनका कोई अस्तित्व नहीं है किन्तु यह बात सही नहीं है। योग शास्त्र का लेख है–सिद्धिभिः परिहीनं तु नरं बद्ध एवलक्षयेत्'। योग शिखोपनिषद में कहा है। सिद्धियाँ जिस साधक में नहीं हैं वह तो बद्ध ही है बन्धन में ही है मुक्त नहीं है। सिद्धियों में फँसना नहीं चाहिये यह बात योग दर्शन में चेतावनी के साथ कह दिया गया है। अन्यथा पुनः संसार चक्र में योगी पड़ सकता है। इस प्रकार से यह समाधि की दशा में विघ्न होती हैं, किन्तु व्यस्थान की दशा में ये सिद्धियाँ स्वयं प्रकट रहती हैं योगी के मन के भाव परिणाम रूप में कार्य रूप मे परिणत होती रहती हैं। योगी की इच्छा के अनुसार ही समस्त प्रकृति वर्तती रहती है। योगी के इच्छाओं की विघात नहीं होता है। योगी सर्व समर्थ होकर विचरण करता है। इन सिद्धियों में सर्वज्ञता नामक सिद्धि भी योगी को प्राप्त हो जाती है। सभी सिद्धान्त अपरोक्ष रूप में सामने होकर अर्थ को प्रकट करते रहते हैं। योगी आत्म–विकास के मार्ग पर चलता हुआ अन्त में निर्बीज समाधि को पा जाता है। जीते–जी मुक्त हो जाता है उसका संसार में पुनरागमन नहीं होता है।

योग ही आध्यात्म–विद्या है, पराविद्या है। इसे ही ब्रह्म विद्या कहा गया है। योग से ही दिव्य दृष्टि पाकर योगी परम सत्य ईश्वर का साक्षात्कार कर लेता है।

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

श्री शुकदेव जी कहते हैं-परीक्षित! सर्वन्तरयामी श्री कृष्ण कुब्जा का प्रिय करने उसके घर गये। भगवान को अपने घर आया देख कुब्जा हड़बड़ा उठी और सखियों संग आगे बढ़कर स्वागत सत्कार करने के पश्चात् विधिवत् पूजा किया। कुब्जा संकोच से कुछ झिझक रही थी। भगवान ने उसकी कलाई पकड़ कर अपने पास बैठा लिया। अंगराग प्रभु को अर्पित करने के शुभ कर्म से वह टेढ़ेपन से मुक्त तो हुई ही आज भगवान उसे अपना सानिध्य प्रदान कर रहे हैं।

कैवल्य मोक्ष के जो अधीश्वर हैं उन्हें पाकर उस दुर्भागा ने क्या माँगा–प्रियतम! आप कुछ दिन यहीं रहकर मेरे साथ क्रीड़ा कीजिये। क्योंकि मुझसे आपका साथ नहीं छोड़ा जाता। भगवान ने आने का वचन निभाया और उसे अभिष्ट वर देकर अपने घर लौट आये।

परीक्षित! भगवान समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। जो कोई उन्हें प्रसन्न करके उनसे विषय–सुख माँगता है, वह निश्चय ही दुर्बुद्धि है।

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ।।

(अ. 48 स्क. 10)

इसके बाद एक दिन भगवान श्रीकृष्ण बलराम जी और उद्धव जी अक्रूर जी के घर गये। उनसे कुछ काम भी लेना था। श्री अक्रूर जी भगवान को देखते ही आनन्द से भरकर उनका अभिनन्दन, बन्दन विधिवत् पूजन किया। वे बोले–भगवन! यह हम सभी यदुवंशियों का बड़ा सौभाग्य है कि आप द्वारा पापी कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया।

प्रभो! आप दोनों जगत् के कारण और जगदरूप, आदिपुरुष हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, न कारण और न कार्य। आप रजोगुणी, सत्वगुणी और तमोगुणी शक्तियों से जगत की रचना, पालन और संहार करते हैं। परन्तु इन पापों से आप अलिप्त हैं। आप कर्मबन्धनों से परे शुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं। दुष्टों तथा पाखण्ड का जब जगत में बोल–बाला होता है, तब–तब आप शुद्ध सत्त्वमय शरीर ग्रहण करते हैं। आप प्रेमी भक्तों

के प्रियतम, सत्यवक्ता, अहैतुकी कृपालु एवं एक रस हैं। बड़े-बड़े योगिराज एवं देवता भी आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं। मेरा अहोभाग्य! आपका साक्षात् दर्शन मुझे प्राप्त है। भक्तों के कष्ट मोचन कर्ता प्रभो आप ही हैं। मेरे गाढ़े कर्म बन्धन को कृपा कर काट दीजिये।

दिष्टया जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह-
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम्।।27।।

(अ. 48 स्कं. 10)

श्री अक्रूर जी द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान मधुर मुस्कान के साथ बोले-तात्! आप हमारे गुरु-हित चाहने वाले चाचा हैं। मनुष्य को अपने परम कल्याण हेतु, आप जैसे संतों की सदैव सेवा करनी चाहिये। संत देवताओं से भी बढ़कर हैं। क्योंकि देवताओं में स्वार्थ रहता है, परन्तु संतों में नहीं। केवल जल के तीर्थ ही तीर्थ नहीं हैं, केवल मूर्तियाँ ही देवता नहीं हैं। क्योंकि इनको भली-भाँति बहुत समय तक श्रद्धापूर्वक सेवा करने से पवित्र करते हैं। परन्तु संतपुरुष तो अपने दर्शनमात्र से पवित्र कर देते हैं।

भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः।।30।।
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः।।31।।

(अ. 48 स्कं. 10)

भगवान ने अक्रूर जी से कहा-चाचाजी! आप हमारे परम हितैषी हैं। अतः आप पाण्डवों का हित करने के लिये एवं उनका कुशल-मंगल जानने के लिये हस्तिनापुर जाइये। पाण्डव बड़े दुःख में पड़ गये हैं। मनोबल के कमजोर, अंधे राजा धृतराष्ट्र अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन के अधीन हैं। वे पाण्डवों के साथ अपने पुत्रों जैसा समान व्यवहार नहीं करते। आपके द्वारा समाचार जानकर मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे उन सम्बन्धियों को सुख मिले।

भगवान की आज्ञा से अक्रूर जी हस्तिनापुर गये। वे पहले धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, युधिष्ठिर, आदि पाँचों पाण्डवों से मिले। धृतराष्ट्र के व्यवहार पाण्डवों के प्रति किस प्रकार का है जानने के लिये कुछ महीने वहीं रहे। जब अक्रूर जी कुन्ती के घर आये, तब वह अपने भाई के पास बैठकर मायके का

हाल–चाल पूछा। उन्होंने कहा–प्यारे भाई! मैंने सुना है कि हमारे भतीजे, भगवान कृष्ण और बलराम बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागत–रक्षक हैं। मैं शत्रुओं के बीच घिरकर शोकाकुल हो रही हूँ। मेरे बच्चे बिना बाप के हो गये हैं। क्या हमारे कृष्ण कभी यहाँ आकर मुझको और इन अनाथ बालकों को सान्त्वना देंगे? भाव में भरकर स्वगत बोली–हे महायोगी कृष्ण! तुम सारे विश्व के जीवन दाता हो। गोविन्द! मैं अपने बच्चों के साथ दुःख पर दुःख भोग रही हूँ। मैं तुम्हारी शरण लेती हूँ। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम्॥11॥

श्रीकृष्ण! तुम मायातीत परम शुद्ध तत्त्व हो। तुम स्वयं ब्रह्म, परमात्मा हो। समस्त साधनों, योगों के स्वामी हो और स्वयं योग भी हो। मैं तुम्हारी शरण में आयी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो।

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता॥3॥

(अ. 49 स्कं. 10)

श्री शुकदेव जी ने कहा–परीक्षित! तुम्हारी परदादी श्रीकृष्ण को स्मरण कर अत्यन्त दुःखित हो रो पड़ी। अक्रूर जी एवं विदुर जी ने उन्हें सान्त्वना दी। महीनों रुककर अक्रूर जी सारी परिस्थिति का ज्ञान लेकर, अब जब मथुरा लौटने को हुये तो उन्होंने धृतराष्ट्र से मिलकर, उसे अध्यात्म, नीत युक्त वचन समझाने का प्रयास किया। उन्होंने कहा–राजन्! प्रजा के साथ सद्व्यवहार करिये, स्वजनों के साथ समान बर्ताव करिये। ऐसा न करने पर, मृत्यु के पश्चात् नर्क में जाना पड़ेगा। जीव अकेला जन्म लेता है और मरकर भी अकेला ही जाता है। पाप–पुण्य का फल भी अकेला ही भोगना पड़ता है। राजन्! आप अपने प्रयत्न से, अपनी शक्ति से चित्त को रोकिये, ममतावश पक्षपात् न कीजिये। आप समर्थ हैं, समत्व में स्थित हो जाइये और इस संसार की ओर से उपराम हो, शान्ति उपलब्ध करिये।

धृतराष्ट्र पर इन बातों का बहुत कुछ असर नहीं पड़ा। इस प्रकार अक्रूर जी स्वजन लोगों से अनुमति लेकर मथुरा लौट आये। श्री कृष्ण भगवान से धृतराष्ट्र का सारा व्यवहार–बर्ताव जो पाण्डवों के प्रति था, कह सुनाया।

दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता

(श्री गुरुदेव जी का प्रवचन–सार)

प्रेषक–श्री डॉ. विष्णुदत्त शर्मा

अभयं सत्व संशुद्धि ज्ञान व्यवस्थितिः, दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।
अहिंसा सत्यम क्रोधेस्त्यागः शांतिरपैशुनम, दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दव ह्रीरचापलम्।।
तेजः क्षमा धृति शौचमद्रोहो नातिमानिता, भवंति संपदं दैवी मभिजातस्य भारत।
दंभो दर्पो अभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च, अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम।।
दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता, मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पांडव।।

दैवी–सम्पत्ति या दैवी–गुणों की महिमा से हमारे शस्त्र ओतप्रोत हैं। हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों ने मनुष्य मात्र को संबोधित करते हुये समय–समय पर आदेश दिया है कि अपने कल्याण के लिये इस संसार सागर से तरने के लिये, जीवन व मृत्यु रूपी महान दुःखों से निवृत्ति पाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्दर दैवी–गुणों का विकास करना होगा। इन्द्रिय–निग्रह एक महान दैवी गुण है। जिन लोगों का इन्द्रियों पर अधिकार नहीं होता ऐसे लोगों का पतन अवश्यम्भावी है। अतः हमारे पूर्वजों ने आदेश दिया है कि इन्द्रिय–निग्रह के लिये सदैव प्रयत्नशील व सावधान रहना चाहिये। यदि संस्कार वश पाप–प्रवृत्ति बन भी जाये तो मन को वहाँ से अवश्य ही हटा लेना चाहिये। इस प्रकार से शनैः–शनैः अभ्यास करने से कालान्तर में इन्द्रियों का दमन हो जायेगा। इन्द्रिय–निग्रह करने वाले व्यक्ति में अनुपम गुणों का विकास होता है और इसके सिद्ध हो जाने पर उसमें अन्य व्यक्तियों के अन्दर निज दिव्य गुण–शक्ति का संचार करने की सामर्थ्य आ जाती है। जहाँ हमारे मनीषी ऋषियों मुनियों ने इन्द्रिय निग्रह को आवश्यक बतलाया वहीं उन्होंने तप, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, संतोष, अभयता, आर्जवता, लज्जा व धर्म को भी अत्यधिक महत्त्व दिया है। तप की महिमा बतलाते हुये भगवान व्यासदेव जी ने लिखा है कि अनादि काल से कर्म क्लेश वासना आदि के द्वारा उत्पन्न हुआ विषय जाल अन्तःकरण की शुद्धि के बिना नहीं कटता और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये तप आवश्यक है। अतः तप के बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता। द्वन्द्व सहन का नाम तप है, द्वन्द भूख–प्यास–सर्दी–गर्मी, सुख दुःख के जोड़े का नाम है। प्राणायाम अहिंसा ब्रह्मचर्य व सत्य भाषण आदि सभी परम तप हैं। देव द्विज गुरु व बुद्धिमान लोगों की सेवा व शौच–नम्रता धारण करना ब्रह्मचर्य और अहिंसा व्रत का पूर्ण रूप

से पालन करना यह शारीरिक तप कहलाता है। मन की प्रसन्नता मृदुता मौनधारण करना आत्म–निग्रह और भावों की शुद्धि यह मानस तप कहलाता है। मनुष्य मात्र के लिये ये सभी तप उपादेय हैं। तप के द्वारा अशुद्धि नाश हो जाने पर योगी को कायिक व एन्द्रिय सिद्धि स्वतः ही उपलब्ध हो जाती हैं। कायिक सिद्धि से अणिमा, महिमा आदि व ऐन्द्रिय सिद्धि से दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि की शक्ति सुलभ हो जाती है। स्वाध्याय के बारे में बतलाते हुये भगवान व्यासदेव जी ने कहा है कि स्वाध्याय और योग का अत्यन्त अभिन्न सम्बन्ध है। स्वाध्याय से योग ध्यान व ध्यान के पश्चात् पुनः स्वाध्याय करने से अर्थात् स्वाध्याय व योग दोनों की सम्पत्ति से व्यक्ति में वह परम ईश्वर प्रकाशित हो जाया करता है। स्वाध्याय की परिभाषा बतलाते हुये व्यासजी ने कहा है कि प्रणव आदि प्रभू के पवित्र नामों का जप करना या मोक्ष शास्त्र गीता उपनिषदों का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्यायशील व्यक्ति के समक्ष देवता, ऋषि व सिद्ध लोग उपस्थित हुआ करते हैं और उसकी मनोनुकूल इच्छा वस्तु प्रदान कर दिया करते हैं। अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुँच जाने वाले साधक के प्रति प्राणीमात्र बैर छोड़ देते हैं। इसी कारण से इस अहिंसा के पूर्ण प्रतीक हमारे ऋषि मुनियों के आश्रमों में शेर, गाय, चीता, मृग, मयूर व सर्पादिकों का समान भाव से रहना सुनते हैं। संतोष का अर्थ है मन की पूर्ण तुष्टि। संतोषी वही है जो दृष्ट या अदृष्ट विषयों में पूर्ण वितृष्ण है। जिसे इस लोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त तक के भोग विचलित नहीं कर सकते, ऐसा व्यक्ति स्थित प्रज्ञ कहलाता है। इतने ऊँचे संतोष को प्राप्त कर मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। भगवान पतंजलि ने सन्तोष का फल अनुत्तम सुख लाभ कहा है। अनुत्तम सुख वह है जिससे बढ़कर और कोई सुख हो ही नहीं सकता। सत्य एक महान ईश्वरीय गुण है। सत्य की महाशक्ति का वर्णन करते हुये हमारे पूर्वजों ने उच्च–स्वर में कह दिया है–

''सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पंथा विततो देवयानः।।''

सत्य के बारे में भगवान पतंजलि ने आदेश दिया–

''सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वमः।''

इस पर भगवान व्यास ने अपने भाष्य में लिखा है कि एक सत्य प्रतिष्ठ योगी जिसने अपने जीवन काल में कभी असत्य नहीं बोला उसकी वाणी व्यर्थ नहीं जाती है। उसे बिना प्रयत्न के वाक् सिद्धि मिलती है। उसको तप कहा गया है। देवों का मार्ग सत्य से ही विस्तृत है। प्रभु कृष्ण ने गीता में सत शब्द ब्रह्म का नाम बतलाया है।

ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मणास्त्रिविधस्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।

इसी प्रकार का संकेत उपनिषदों में स्थान–स्थान पर भरा है। जो लोग किसी की भी

विशुनता (चापलूसी) नही करते, दयावान हैं, जिनके अन्दर स्वाभाविक तेज रहता है, जो शक्ति रखते हुये भी कभी शक्ति का प्रदर्शन नहीं करते, क्षमावान हैं और निरभिमानता को प्राप्त हो चुके है ऐसे सभी व्यक्ति कल्याण के भाजन हैं, कृत्यकृत्य हैं। नम्रता, लज्जा व धर्मारूढ़ता भी महान दैवी गुण हैं। जिस भाग्यशाली व्यक्ति पर परम प्रभु प्रसन्न रहते हैं उसमें विनम्रता (आर्जवता) आ जाया करती है। जो लोग विनम्र रहते हैं, देव, द्विज, गुरु व बुद्धिमान मनुष्यों के समक्ष झुके रहते हैं वे अवश्य ही उन महापुरुषों की शक्ति को ले लिया करते हैं। इसके विपरीत जो लोग अहंकारी होते हैं वे अपनी शक्ति हर समय खोते रहते हैं। जिस भाग्यवान जीव के अन्दर आर्जवता आ जाये उस व्यक्ति का कल्याण निश्चित ही है। आर्जवता एक महान दैवी गुण है यह शक्ति को लेने का बड़ा ही सरल तरीका है।

महाभारत युद्ध से पूर्व राजा धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा कि इस युद्ध में कृष्ण किसका पक्ष लेंगे और विजय किसकी होगी। संजय ने उत्तर दिया कि जिस ओर श्रीकृष्ण रहेंगे उसी पक्ष की विजय होगी। पुनः धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया कि श्रीकृष्ण किस ओर होंगे। संजय निर्भय थे, सत्यवादी थे, विनम्रता उनके अन्दर थी। अतः इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बड़े ही मृदु शब्दों में कहा कि राजन जिस समुदाय में श्रीकृष्ण रहा करते हैं उस समुदाय के लोगों के बारे में मुझे ज्ञात है

यतः सत्यं यतोधर्मो,
यतः ह्री आर्जयम यतः।
ततो भवति गोविन्दो,
यत्र कृष्णः ततो जयः।।

अर्थात् जहाँ सच्चाई रहती है वहाँ श्रीकृष्ण रहा करते हैं, जिधर धर्म है उधर श्रीकृष्ण हैं, जहाँ लज्जा होती है उसी समुदाय में श्रीकृष्ण रहते हैं, जहाँ आर्जवता (नम्रता) है उधर ही प्रभु कृष्ण का वास है। ये चार दैवी गुण जिधर होंगे उधर ही प्रभु शक्ति का वास होगा। ये सद्गुण धृतराष्ट्र के पुत्रों में नही थे इसका ज्ञान धृतराष्ट्र को था। संजय धर्म का मर्म जानने वाले थे। अतः इस प्रकार उन्होंने की निर्भयता, विनम्रता एवं मृदु शब्दों में राजा धृतराष्ट्र को यह इंगित कर दिया कि प्रभु कृष्ण इस महाभारत युद्ध में पाण्डवों की ही ओर रहेंगे और इस युद्ध में विजय भी पाण्डवों की ही निश्चित है।

दैवी–संपत्ति का वर्णन करते हुये योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने भी श्री मद्भगवद् गीता के सोलहवें अध्याय में अर्जुन से अपना मत इसी प्रकार व्यक्त किया है।

भगवान् सूर्य और उनकी लीला-कथाएँ

(कल्याण से साभार)

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरञ्चिनारायणशंकरात्मने।।

(आदित्य-हृदय)

'जो जगत् के एकमात्र नेत्र (प्रकाशक) हैं, संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण हैं, उन वेदत्रयी स्वरूप, सत्त्वादि तीनों गुणों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक तीन रूप धारण करने वाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है।'

भगवान् सूर्य की महिमा और ब्रह्ममयता

भुवन भास्कर भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। वे सम्पूर्ण चराचर की अन्तरात्मा हैं (**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** ऋ. 1/115/1), सर्वत्र व्याप्त हैं और सभी को नित्य प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। प्रतिदिन वे पूर्व दिशा में उदित होते हैं और सायंकाल पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। उनकी यह दैनन्दिन लीला है। अपनी इस दैनन्दिन लीला का वे सबको साक्षात्कार कराते हैं। वे प्रतिदिन उदय होने, उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होने तथा अस्त होने की लीला करते हैं। भगवान् सूर्य की इस त्रिविध लीला के साथ त्रिकाल गायत्री-उपासना का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायण के साक्षात् प्रतीक हैं, इसलिये वे सूर्यनारायण कहलाते हैं। सूर्य साक्षात् परमात्म-परब्रह्म-स्वरूप हैं। सूर्य से ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हीं में विलय हो जाता है। सूर्योपनिषद् में कहा गया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च।।

सूर्यनारायण और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। तत्त्वतः भगवान् सूर्य परब्रह्म हैं। ब्रह्म के भर्ग–तेज का रूप ही सूर्यनारायण हैं। श्रुतियों तथा उपनिषदों में भगवान् सूर्य तथा ब्रह्म को एक ही निरूपित किया गया है। छान्दोग्य श्रुति का कथन है–

'सूर्याद्ध खल्विमानि भूतानि जायन्ते।' असावादित्यो ब्रह्म।'

प्राणिमात्र के हेतु, सृष्टिकर्ता तथा प्रत्यक्ष देवता होने के कारण सूर्य ब्रह्मरूप हैं, इसलिये सबके उपास्य हैं। ये सर्वप्रसिद्ध देवता हैं। अन्य किसी देवता की स्थिति में संदेह भी हो सकता है; किन्तु भगवान् सूर्य की सत्ता में किसी को भी संदेह के लिये किंचिन्मात्र कोई अवसर नहीं है। भगवान् भुवनभास्कर आकाशमण्डल में स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। अशेष जगत् पर जो उनका नित्य चैतन्यमय अनुग्रह प्रसारित होता आया है, उसकी कोई इयत्ता नहीं है। उनकी अनन्त महिमा है। वे साक्षात् लीला–विग्रह के रूप में सबको अपना प्रत्यक्ष दर्शन दे रहे हैं। उनका सब पर समान अनुग्रह है। उनकी अनुग्रह–लीलाओं से सभी प्राणी अभिभूत हैं। एक दिन भी उनकी आविर्भाव एवं तिरोधान–लीला न हो तो जगत् की सम्पूर्ण मर्यादाएँ विच्छृंखलित हो जायेंगी। संसार के समस्त प्राणी, जीव–जन्तु तथा वनस्पतियाँ भगवान् सूर्य की चैतन्यशक्ति से ही अनुप्राणित हैं। सूर्य के अभाव में न तो संसार में कोई गति हो सकती है और न कोई क्रिया ही होना सम्भव है।

उपनिषदों में भगवान् सूर्य के तीन रूप माने गये हैं–(1) निर्गुण–निराकार, (2) सगुण–निराकार तथा (3) सगुण–साकार। यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण–निराकार हैं, तथापि अपनी माया–शक्ति के सम्बन्ध से सगुण–साकार भी हैं। उपनिषदों में इनके स्वरूप का मार्मिक वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है–

'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत।'

(छान्दोग्य. 1/3/1)

'जो ये भगवान् सूर्य आकाश में तपते हैं, उनकी उद्गीथरूप से उपासना करनी चाहिये।' **'आदित्यो ब्रह्मेति** (छान्दोग्य. 3/19/1)' 'आदित्य ब्रह्म है'–इस रूप में आदित्य की उपासना करनी चाहिये।

'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति।।'

(मैत्रा. 5/3)

'आदित्य ही ओम् है'—इस रूप में आदित्य का ध्यान करते हुए अपने को तद्रूप करना चाहिये।

चाक्षुषोपनिषद् में यह वर्णन आया है कि सांकृति मुनि ने आदित्यलोक में जाकर भगवान् सूर्य को नमस्कार किया और चाक्षुष्मती–विद्या–प्राप्ति के लिये उनकी प्रार्थना की। महामुनि–याज्ञवल्क्यने भी आदित्य लोक में जाकर और उन्हें प्रणाम कर कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्व का वर्णन कीजिये।' सूर्यदेव ने दोनों मुनियों को अभीष्ट विद्याएँ प्रदान कीं।

भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व (अध्याय 48 । 21–28) में भगवान् वासुदेव ने साम्ब को उनकी जिज्ञासा का उत्तर देते हुए कहा—'सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, वे इस समस्त जगत् के नेत्र हैं, इन्हीं से दिन का सर्जन होता है। निरन्तर रहने वाला इनसे अधिक कोई देवता नहीं है। इन्हीं से यह जगत् उत्पन्न होता है और अन्त समय में इन्हीं में लय को प्राप्त होता है। कृत आदि लक्षणों वाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्यगण वसुगण, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुवः स्वः आदि लोक, सम्पूर्ण नग (पर्वत), नाग, नदियाँ, समुद्र तथा समस्त भूतों का समुदाय है—इन सभी के हेतु दिवाकर ही हैं। इन्हीं से यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थ में प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखलायी पड़ता है। इनके उदय होने पर सभी का उदय होता है और अस्त होने पर सब अस्त हो जाते हैं। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पड़ता। तात्पर्य यह कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता न है, न हुआ है और न भविष्य में होगा ही। इसीलिये ये समस्त वेदों में 'परमात्मा' नाम से पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणों में इन्हें 'अन्तरात्मा' नाम से अभिहित किया जाता है। ये बाह्यात्मा, सुषुम्णास्थ, स्वप्नस्थ और जाग्रत्–स्थिति वाले होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सूर्य आर्य देवता हैं।'

जैसे भगवान् विष्णु का स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शंकर का व कैलास तथा चतुर्मुख ब्रह्मा का स्थान ब्रह्मलोक है, वैसे ही भुवनभास्कर सूर्य का स्थान आदित्यलोक सूर्यमण्डल है। प्रायः लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायण को एक ही मानते हैं। सूर्य ही कालचक्र के प्रणेता हैं, सूर्य से ही दिन–रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदि का विभाग होता है। सूर्य सम्पूर्ण संसार के प्रकाशक हैं, इनके बिना सब अन्धकार है। सूर्य ही तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं—

'आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुः श्रोत्रे आत्मा मनः'

(नारायणोपनिषद् 15)

'मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते।'

(तै. उ. 1/5/1)

भूः, भुवः, एवं स्वः– इन तीन लोकों की अपेक्षा 'महः' जो चौथा लोक है, वह आदित्य ही है। आदित्य में ही समस्त लोक वृद्धि को प्राप्त करते हैं। आदित्य लोक महान् है। 'भूः, भुवः और स्वः'–ये तीनों लोक इसके अवयव–अंग हैं और यह अंगी है। आदित्य के योग से ही अन्य लोकादि महत्ता प्राप्त करते हैं, अतः आदित्य की महिमा अद्वितीय है।

आदित्यलोक में भगवान् सूर्यनारायण का साकार विग्रह है। वे रक्त–कमल पर विराजमान हैं, उनका वर्ण हिरण्मय है, उनकी चार भुजाएँ हैं। वे दो भुजाओं में पद्म धारण किये हैं और उनके दो हाथ अभय तथा वर–मुद्रा से सुशोभित हैं, वे सप्ताश्वयुक्त रथ में स्थित हैं। जो उपासक ऐसे स्वरूप वाले उन भगवान् सूर्य की उपासना करते हैं–'उन्हें मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। उपासक के सम्मुख प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्ति करते हैं और उनकी कृपा से मनुष्य के मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।' ब्रह्मपुराण में कहा गया है–

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति।।

भगवान् सूर्य अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तल को प्रेरित करती रहती है–'उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ?' यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा? परंतु परमात्मा का अवतार होता ही है, तो उनका क्या अवतार हुआ? उन्होंने क्या जन्म ग्रहण किया? इस सम्बन्ध में पुराणों में एक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार एक बार देवासुर–संग्राम में दैत्य–दानवों ने मिलकर देवताओं को हरा दिया, तब से देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा में सतत् प्रयत्नशील थे। देवताओं की माता अदिति प्रजापति दक्ष की कन्या थीं, उनका विवाह महर्षि कश्यप से हुआ था। इस हार से अत्यन्त दुःखी होकर वे सूर्य की उपासना–प्रार्थना करने लगीं–'भगवन्! आप मुझ पर प्रसन्न हों। गोप (किरणों के स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके स्वरूप का सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तों पर दया करने वाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उन पर कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रों का राज्य

एवं यज्ञभाग दैत्यों एवं दानवों ने छीन लिया है। आप अपने अंश से मेरे गर्भ द्वारा प्रकट होकर पुत्रों की रक्षा करें।' भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा–'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें अंश से तुम्हारे उदर से प्रकट होकर तेरे पुत्रों की रक्षा करूँगा।' इतना कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् सूर्य की आराधना में तत्पर हो यम–नियम से रहने लगीं। महर्षि कश्यप जी इस समाचार से अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्य का जन्म अदिति के गर्भ से हुआ। इस अवतार को 'मार्तण्ड' के नाम से पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्य को भाई के रूप में पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराण में चर्चा है कि भगवान् विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्माजी का जन्म हुआ। ब्रह्माजी के पुत्र का नाम मरीचि है। मरीचि से महर्षि कश्यप का जन्म हुआ। ये महर्षि कश्यप ही सूर्य के पिता हैं।

नित्य–निरन्तर सबको प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले तो भगवान् भुवनभास्कर सूर्य ही हैं। सौर सम्प्रदाय के अनुसार वेदोक्त सहस्त्रबाहु, सहस्त्रशीर्षा, प्रजापति, परमपुरुष, पुराणात्मा, सभी भुवनों के गोप्ता, आदित्य–वर्ण से निर्दिष्ट ये प्रत्यक्ष सूर्यदेव ही हैं–

सहस्त्रशीर्षा सुमनाः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।।
सहस्त्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निगद्यते।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरुषः पुराणः ।।

(भविष्यपुराण 1/77/19, 20)

परम दिव्य तेजः पुञ्ज ही भगवान् सूर्य का स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्ति से चौदहों लोक दीप्तिमान् हो रहे हैं। सूर्य के समग्र तेजोमण्डल दो भागों में विभक्त हैं, उनका कार्य पाताल लोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त चतुर्दश लोकों में निवास करने वाले प्राणियों के भीतर ज्ञान एवं क्रिया–शक्ति का उद्दीपन करना है। सूर्यमण्डल का पहला तेज ऊर्ध्व की ओर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेज की शक्ति 'संज्ञा' है। दूसरा तेज अधोगामी–पृथ्वी से पातालपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेज की शक्ति का नाम 'छाया' है। पुराण की कथा के अनुसार संज्ञा तथा छाया–ये दोनों सूर्य की पत्नियाँ मानी गयी हैं। भगवान् सूर्य की ये पत्नियाँ शक्ति के स्थान पर निरन्तर कार्यरत रहती हैं।

कहते हैं कि देवता, मुनि और महर्षियों ने श्रेय तथा प्रेय का मार्ग भगवान् सूर्य के तेज से ही उपलब्ध किया था। संज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति है, यह मुनि एवं महर्षियों के हृदय में

संवित्–चेतना का उदय कराती है, जिसके कारण भगवान् सूर्य के द्युलोक–व्याप्त तेज से अनन्य संयोग होने पर 'विद्या' नाम की शक्ति उत्पन्न हुई। **'विद्ययामृतमश्नुते'**–इस श्रुति के अनुसार विद्या की उपासना से उन्हें अमृतपान का अवसर मिला।

अविद्या प्रेयमार्ग का प्रकाशन करने वाली शक्ति है। भगवान् सूर्य का अधोव्याप्त तेज छाया से संयुक्त होने पर अर्थात् छाया और तेज के परस्पर मिलने से अविद्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्या की जननी है। अविद्या से मनुष्यों को कर्म का मार्ग ही सत्य दिखलायी पड़ता है। वेद–शास्त्र के ज्ञाता विद्वान् भी प्रेय–ऐहिक विषयसुख या आमुष्मिक स्वर्ग में प्राप्त भोग–ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अविद्या की उपासना करते हैं।

सभी प्राणियों को जन्म से ही भगवान् सूर्य की विविध लीलाओं के दर्शन होते हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के केन्द्र, स्थूल काल के नियामक, तेज के महान् आकर, विश्व के पोषक, प्राणदाता, समस्त चराचर प्राणियों के आधार तथा प्रत्यक्ष दीखने वाले और समस्त देवों में श्रेष्ठ हैं। त्रिकाल–संध्या में सूर्यरूप से भगवान् नारायण की ही उपासना होती है। उनकी उपासना से हमारे तेज, बल, आयु, बुद्धि तथा नेत्र–ज्योति की वृद्धि होती है और मृत्यु के अनन्तर वे अपनी रश्मियों के द्वारा भगवान् के परमधाम में ले जाते हैं। भारतीय चिन्तन–पद्धति के अनुसार सूर्योपासना किये बिना कोई भी मानव किसी भी शुभ कर्म का अधिकारी नहीं बन सकता। भगवान् श्रीकृष्ण ने विभूति स्वरूप के वर्णन में **'ज्योतिषां रविरंशुमान्'**–से स्वयं को इंगित किया है। पातञ्जलयोगसूत्र (3/26)–में वर्णित है कि सूर्य का ध्यान करने से निखिल भुवनमण्डल का ज्ञान हो जाता है–**'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'**।

महाभारत में युधिष्ठिर ने सूर्य की स्तुति करते हुए कहा है–

त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्।।

अर्थात् हे सूर्य! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि, सूक्ष्म मन, प्रभु और शाश्वत ब्रह्म हैं।

सूर्यतापिनी–उपनिषद् में कहा गया है कि ये सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और भास्कर हैं। ये ही त्रिमूर्तिरूप और वेदत्रयी हैं। ये सूर्य सर्वदेवमय हैं–

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः।।

आदित्य हृदय के अनुसार एक ही सूर्य तीनों कालों में क्रमशः त्रिदेव बनते हैं।

यथा—

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः।।

ये कभी क्षीण नहीं होते, इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरों के भी पिता और देवताओं के भी देवता हैं। असंख्य योगिजन अपने कलेवर का त्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्य में ही प्रवेश करते हैं। ये सम्पूर्ण जगत के माता–पिता और गुरु हैं।

भगवान् सूर्य की रश्मियों में विलक्षण जीवनीशक्ति है तथा सभी प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोगों को सर्वथा अपहृत करने की अद्भुत सामर्थ्य है। **'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'**–इस पुराण–वचन से सिद्ध है कि आरोग्य की प्राप्ति के लिये भगवान् भास्कर की आराधना विशेष फलवती होती है। नित्य अरुणोदय–वेला में भगवान् सूर्य के अरुण बिम्ब के दर्शन तथा पुनः प्रत्यक्ष सूर्य के दर्शन से न केवल नेत्र–ज्योति का विकास होता है, अपितु अन्तःकरण भी निर्मल होता है, बुद्धि शुद्ध हो जाती है, सात्विकता का संचार होता है और चाक्षुष्मती विद्या के पाठ से नेत्र–ज्योति दिव्य हो उठती है और कुष्ठादि रोग दूर हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक सूर्यार्घ्यदान, सूर्य–नमस्कार, सूर्य–सम्बन्धी स्तोत्रों का पाठ तथा यथाधिकार संध्या–वन्दन करने से भगवान् सूर्य की अनुकम्पा सहज ही प्राप्त हो जाती है। ऋषियों के दीर्घ आयुष्य, विशद प्रज्ञा, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चस् का एकमात्र मूल कारण दीर्घकालीन संध्या में **सौरी गायत्री** का जप एवं सूर्योपस्थान आदि क्रियाएँ ही थीं। ऋषिगण तीनों संध्याओं में प्राणायाम और समाधि द्वारा भगवान् सविता के वरेण्य तेज का ध्यान करते हुए गायत्री–मन्त्र का जप करते थे। गायत्री–मन्त्र में मूलतः परब्रह्मस्वरूप सूर्यदेवता की आराधना ही ध्येय है, इसीलिये नित्य त्रिकाल संध्या–वन्दन का विधान शास्त्रों में प्रतिपादित है। यहाँ तक कि अशौच आदि में भी संध्या–कर्म का लोप नहीं होता। यह सब भगवान सूर्य की ही महिमा का परिचायक है।

आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग

–स्वामी विवेकानन्द

योगशास्त्र यह दावा करता है कि उसने उन नियमों को ढूंढ निकाला है, जिनके द्वारा इस व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इन नियमों तथा उपायों की ओर ठीक–ठीक ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और उसे शक्तिशाली बना सकता है। बड़ी–बड़ी व्यावहारिक बातों में यह एक महत्त्व की बात है और समस्त शिक्षा का यही रहस्य है। इसकी उपयोगिता सार्वदेशीय है। चाहे वह गृहस्थ हो, चाहे गरीब, अमीर, व्यापारी या धार्मिक–सभी के जीवन में व्यक्तित्व को शक्तिशाली बनाना ही एक महत्त्व की बात है। ऐसे अनेक सूक्ष्म नियम हैं, जो हम जानते हैं, इन भौतिक नियमों से अतीत हैं। मतलब यह कि भौतिक जगत्, मानसिक जगत् या आध्यात्मिक जगत्–इस तरह की कोई नितान्त स्वतन्त्र सत्ताएँ नहीं हैं। जो कुछ है, सब एक तत्त्व है। या हम यों कहेंगे कि यह सब एक ऐसी वस्तु है, जो यहाँ पर स्थूल है और जैसे–जैसे यह ऊँची चढ़ती है, वैसे–ही–वैसे वह सूक्ष्मतर होती जाती है, सूक्ष्मतम को हम आत्मा कहते हैं और स्थूलतम को शरीर। और जो कुछ छोटे परिमाण में इस शरीर में है, वही बड़े परिमाण में विश्व में है। जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। यह हमारा विश्व ठीक इसी प्रकार का है। बहिरंग में स्थूल घनत्व है और जैसे–जैसे यह ऊँचा चढ़ता है, वैसे–वैसे वह सूक्ष्मतर होता जाता है और अन्त में परमेश्वर–रूप बन जाता है।

हम यह भी जानते हैं कि सब से अधिक शक्ति सूक्ष्म में है, स्थूल में नहीं। एक मनुष्य भारी वजन उठाता है। उसकी पेशियाँ फूल उठती है और सम्पूर्ण शरीर पर परिश्रम के चिन्ह दिखने लगते हैं। हम समझते है कि पेशियाँ बहुत शक्तिशाली वस्तु हैं। परन्तु असल में जो पेशियों को शक्ति देते हैं, वे तो धागे के समान पतले तन्तु (nerves) हैं। जिस क्षण इन तन्तुओं में से एक का भी पेशियों से सम्बन्ध टूट जाता है, उसी क्षण वे पेशियाँ बेकाम हो जाती हैं। ये छोटे–छोटे तन्तु किसी अन्य सूक्ष्म–तर वस्तु से अपनी शक्ति ग्रहण करते हैं, और वह सूक्ष्मतर वस्तु फिर अपने से भी अधिक सूक्ष्म विचारों से शक्ति ग्रहण करती है। इसी तरह यह क्रम चलता रहता है। इसलिए वह सूक्ष्म तत्त्व ही है, जो शक्ति का अधिष्ठान है। स्थूल में होने वाली गति हम अवश्य देख सकते हैं, परन्तु सूक्ष्म में होने वाली गति हम

देख नहीं सकते। जब स्थूल वस्तुएँ गति करती है, तो हमें उसका बोध होता है और इसलिए हम स्वाभाविक ही गति का सम्बन्ध स्थूल से जोड़ देते हैं, परन्तु वास्तव में सारी शक्ति सूक्ष्म में ही है। सूक्ष्म में होने वाली गति हम देख नहीं सकते, शायद इसका कारण यह है कि वह गति इतनी तीव्र होती है कि हम उसका अनुभव ही नहीं कर सकते। परन्तु यदि कोई शास्त्र या कोई शोध इन सूक्ष्म शक्तियों के ग्रहण करने में मदद दे, तो यह व्यक्त विश्व ही, जो इन शक्तियों का परिणाम है, हमारे अधीन हो जायेगा। पानी का एक बुलबुला झील की तली से निकलता है, वह ऊपर आता है, परन्तु हम उसे देख नहीं सकते, जब तक कि वह सतह पर आकर फूट नहीं जाता। इसी तरह विचार अधिक विकसित हो जाने पर या कार्य में परिणत हो जाने पर ही देखे जा सकते हैं। हम सदा यही कहा करते हैं कि हमारे कर्मों पर, हमारे विचारों पर हमारा अधिकार नहीं चलता। यह अधिकार हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं? यदि हम सूक्ष्म गतियों पर नियन्त्रण कर सकें, और विचारों के विचार बनने एवं कार्यरूप में परिणत होने के पूर्व ही यदि उसको मूल में ही अधीन कर सकें, तो इस सब को नियन्त्रित कर सकना हमारे लिए सम्भव होगा।

अब, अगर ऐसा कोई उपाय हो, जिसके द्वारा हम इन सूक्ष्म कारणों का, इन सूक्ष्म शक्तियों का विश्लेषण कर सकें, उन्हें समझ सकें, और अन्त में अपने अधीन कर सकें, तभी हम खुद पर अपना अधिकार चला सकेंगे। और जिस मनुष्य का मन उसके अधीन होगा, निश्चय ही वह दूसरों के मनों को भी अपने अधीन कर सकेगा। यही कारण है कि पवित्रता तथा नैतिकता सदा के लिए धर्म के विषय रहे हैं। पवित्र, सदाचारी मनुष्य स्वयं पर नियन्त्रण रखता है। हम सब के मन उस एक ही समष्टि–मन के अंश मात्र हैं। जिसे एक ढेले का ज्ञान हो गया, उसने दुनिया की सारी मिट्टी जान ली। जो अपने मन को जानता है और स्व–अधीन रख सकता है, वह दूसरों के मनों का रहस्य भी पहचानता है और हर मन पर अपनी हुकूमत चला सकता है।

यदि हम इन सूक्ष्म कारणों पर अपना अधिकार चला सकें, तो हम अपने भौतिक दुःखों का अधिकांश दूर कर सकते हैं। यदि ये सूक्ष्म गतियाँ हमारे अधीन हो जायें, तो हम अपनी चिन्ताओं को दूर कर सकते हैं। यदि हम इन सूक्ष्म शक्तियों को अपने अधीन कर लें, तो अनेक अपयश टाले जा सकते हैं। यहाँ तक तो उपयोगिता के बारे में हुआ, लेकिन इसके परे और भी कुछ उच्चतर साध्य हैं।

गुरु पूर्णिमा का पर्व हर्ष व उल्लास के साथ मनाया गया

श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में श्री गुरु पूर्णिमा का महोत्सव 5 जुलाई को बड़े हर्ष व उल्लास के साथ मनाया गया। यद्यपि बाहर से आने वाले श्रद्धालुओं को घर में रहकर ही उत्सव मनाने का आग्रह किया गया था इस कारण से दूर से आने वाले भक्त धाम के दर्शन से वंचित रह गये। जिस किसी के पास निजी वाहन था ऐसे लोग ही आ पाये और दर्शन पूजन करके चले गये। गुरु पूर्णिमा का दिन गुरु भक्तों के लिये बड़े ही महत्त्व का दिन होता है। गुरुदेव तो शिष्य के आत्मा ही होते हैं। उन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

गुरु गीता में भगवान् शिव का आदेश भी है–

यावत् कल्पान्तको देहस्तावद् देवि–गुरुं स्मरेत्।
गुरु लोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि भावयेत्।।

अर्थात् जब तक देह है तब तक गुरु का स्मरण करें। यदि शिष्य को मुक्त होने की इच्छा हो तो गुरु का कभी लोप न करे अर्थात् उसे कभी भी चित्त से विस्मृत न करे। भाव यह है कि शिष्य को गुरुदेव का अहर्निश चिन्तन बनाये रखना चाहिये। आगे भी एक श्लोक में भगवान् सदाशिव कहते हैं–

गुरु मूर्तिं स्मरेत् नित्यं गुरोर्नाम सदाजपेत्।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत्।।

अर्थात् गुरुदेव के स्वरुप का सदा चिन्तन करना चाहिए। गुरु के नाम का सदा जाप करे। गुरुदेव की आज्ञा का पालन करे तथा गुरुदेव के अतिरिक्त किसी अन्य की भावना भी न करे, चिन्तन न करे। गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज कहा करते थे कि जब सिद्ध गुरु शिष्य को दीक्षा देते हैं उस समय मन्त्र के माध्यम से वे स्वयं शिष्य के कारण शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और मुक्ति पर्यन्त उसके चित्त को शुद्ध कर उसे मुक्ति प्रदान कर देते हैं। जो शिष्य गुरु मन्त्र का अहर्निश जाप करता रहता है वह शिष्य गुरुदेव को अपने साथ हर समय विद्यमान देखता है। ऐसे शिष्य का अवश्य ही कल्याण हो जाता है। इसमें कोई संशय की बात नहीं है।

इस प्रकार गुरु पूर्णिमा का यह पर्व सवाई धाम में बड़े हर्ष व उल्लास के साथ मनाया गया। भजन, कीर्तन तथा स्मरण करते हुये यह उत्सव बड़े भाव से मनाया गया।

ध्यानयोग एवं आत्मसाक्षात्कार

—श्री सूरजप्रकाश शर्मा

ध्यानयोग समाधि के द्वारा ही आत्म–साक्षात्कार होता है। इस पर शास्त्र लिखते हैं–

नचक्षुषागृह्यते नापिवाचा

नान्यैर्देवैस्तपसाकर्मणावा।

ज्ञानप्रसादे न विशुद्धसत्त्व स्तत–

स्तुतंपश्यतेनिष्कलंध्यायमानः।। *मु. 3।। खण्ड।।।8।।*

सूक्ष्मतर आत्मा चक्षु–इन्द्रिय से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, वाक्य, श्रोत्र आदि इन्द्रियों और चान्द्रायण आदि तप करके व अग्निहोत्र आदि कर्म करके भी प्रत्यक्ष नहीं होता। तप व कर्म चित्त शुद्धि द्वारा आत्म प्रत्यक्ष के साधन हैं। अतः केवल तप व कर्मों को करके आत्म प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। ज्ञानरूप सत्त्वगुण की निर्मलता करके, रजोतमोगुण की निवृत्ति कर विशुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष आत्म–प्रत्यक्ष के योग्य होता है। उस आत्म–प्रत्यक्ष की योग्यता से अनन्तर ध्यान करता हुआ पुरुष उस निरवयव आत्मा को प्रत्यक्ष करता है।

महर्षि आश्वलाय ने ब्रह्माजी को कहा कि हे भगवन्! ब्रह्म विद्या को कहो, उस को ब्रह्मा जी इस प्रकार कहने लगे कि–

तस्मैसहोवाच पितामहश्च श्रद्धा–भक्ति ध्यानयोगादवै हि।। *(कै. ख 1।।2।।*

श्रद्धा भक्ति के सहित ध्यानयोग से "ब्रह्म–साक्षात्कार" ब्रह्म विद्या प्राप्त होती है।

यजुर्वेद की कठउपनिषद् में यमराज जी नचिकेता को इस प्रकार कहते हैं–

तंदुर्दशं गूढमनुप्रविष्टं गह्वरेष्ठं पुराणम्।

अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवं मत्त्वाधीरोहर्ष शेकोजहाति।।

इस मन्त्र पर शंकर भाष्य–

विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतसः आत्मनि समाधानमध्यात्मयोमस्तस्याधिगमस्तेन मत्त्वा देवमात्मनं धीरोधीमान् हर्षशोका वात्मन उत्कर्षापकर्षयो रमावाज्जहाति।।

भाष्य पर गोपालेन्द्र यती की टीका–

अवधीरो बुद्धिमानिति श्रवणमनन–सत्त्वमुच्यते अध्यात्म योगशब्देन निदि–ध्यासनमुच्यते मत्त्वेति साक्षात्कार उच्यते।

टीका व भाष्य के सहित उपनिषद् मन्त्र का अर्थ–यमराज कहते हैं कि–हे नचिकेतः देह से भिन्न जो आत्मा तुम ने पूछा है, वह आत्मा दुर्दर्श है क्योंकि शब्द, स्पर्श रूप रस आदि

विषयकार वृत्तियों से प्रछन्न है। जीवों की बुद्धि रूप गुहा में स्थित है दुख से साधनों के कष्ट से प्रत्यक्ष होता है जिसको ऐसे सनातन आत्मदेव को 'धीमान' श्रवन मनन यप सांख्य वाला विवेकी पुरुष आत्मा में समाधि को प्राप्ति कर आत्मदेव को साक्षात् करके हर्ष शोक से रहित होता है।

महर्षि गौतम का न्याय शास्त्र भी इस प्रकार बताता है कि–

समाधि विशेषाभ्यासात्। *(अ. 4।। आह्निक 2।। सूत्र 38।।*

अर्थ–समाधि विशेष के अभ्यास से आत्म तत्त्व का साक्षात्कार होता है।

देखिये याज्ञवल्क्यस्मृति–

इज्याचारदमाहिंसा दानस्वाध्यायकर्मणाम्।
अयन्तु परमोधर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।।

अर्थ–यज्ञ, स्नानादि आचार, इन्द्रियों का निरोध, अहिंसा, दान, वेदपाठ इत्यादि धर्म कर्म यह परम धर्म है जो योग कर आत्म–साक्षात्कार करना है।

अब देखिए मनु स्मृति–

प्रियेपुस्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्।
विसृज्यध्यानयोगेन ब्रह्माप्येतिसनातनम्।। *(अ. 6।।79।।*

अपने हितकारी जनों में पुण्य को और अहितकारी जनों में पाप को फेंक कर ध्यानयोग कर सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है, अर्थात् हितकारीजन हितकर्म कर पुण्य भागी, द्वेषी–जन द्वेषकर्म कर पाप भागी होते हैं, सनातन ब्रह्म की प्राप्ति ध्यानयोग करके होती है।

योग वासिष्ठ–

वासनाक्षय विज्ञान मनोनाश महामते।
समकालंचिराभ्यस्ताभयन्तिफलवामुने।।
एकैक शोनिषेव्यन्ते यद्येतेचिरमप्यलम्।
तन्नसिद्धिं प्रयच्छन्नित मन्त्राः संकीलिताइव।।

अनुकूल प्रतिकूल पदार्थों के ज्ञान से जो उन पदार्थों के संस्कार चित में उत्पन्न होते हैं। उन संस्कारों से फिर उन पदार्थों की स्मृतियाँ व इच्छा उत्पन्न होती है। वह संस्कार यहाँ वासना का अर्थ है। उन संस्कारों का तिरोभाव होना क्षय शब्द का अर्थ है। स्मृति आदि वृत्तियों के उत्पादन में असमर्थता ही संस्कारों का तिरोभाव है क्योंकि जब तक चित्त रहे तब तक संस्कारों का अत्यन्त लय नहीं हो सकता, किन्तु तिरोभूत हुए असंख्य संस्कार चित्त में बने रहते हैं। जो स्मृति आदि वृत्तियों के उत्पादन में समर्थ न रहें, वह तिरोभूत संस्कार कहलाते हैं। ऐसा अनात्मपदार्थों के संस्कारों का तिरोभाव वासनाक्षय का अर्थ है।

निरवयव आत्मकार वृत्ति विज्ञान व तत्त्व-ज्ञान का अर्थ है। अनात्माकार वृत्तियों का निरोध मनोनाश का अर्थ है।

वशिष्ठ जी राम जी से कहते हैं—

हे वीतराग महामते राम जी—तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय यह तीनों एककाल में इकट्ठे चिरकाल अभ्यास करे हुए आत्मसाक्षात्कार द्वारा मोक्षफल के देने वाले होते है। यदि एक-एक का अलग अलग चिरकाल का भी अभ्यास करें अर्थात् कदाचित आत्माकार वृत्तियों का प्रवाहरूप तत्त्वज्ञान का अभ्यास करें और मनोनाश, वासनाक्षय का अभ्यास नहीं करें, फिर कदाचित अनात्मकार वृत्तियों का निरोध रूप मनोनाश का अभ्यास करें और वासनाक्षय, तत्त्वज्ञान का अभ्यास नही करें, पुनः कदाचित अनात्म पदार्थों के संस्कारों का तिरोभाव रूप वासनाक्षय का अभ्यास करें और तत्त्वज्ञान मनोनाश का अभ्यास नही करें।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न काल में एक-एक का अलग-अलग अभ्यास करें, तो यह आत्म-साक्षात्कार व मोक्षरूप फल को नहीं देते, जैसे मूर्छा, मरण आदि दोषों से प्रतिबद्ध मन्त्र फल को नहीं देते।

अनात्मकार वृत्तियों का निरोधरूप मनोनाश के सहित आत्मकार वृत्तियों का प्रवाहरूप तत्त्वज्ञान के अभ्यास करने से अनात्म-पदार्थों के संस्कारों का तिरोभावरूप वासना क्षय भी साथ होता रहता है। इस प्रकार तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय का एककाल में इकट्ठा अभ्यास होता है, एवं इन तीनों का इकट्ठा चिरकाल अभ्यास करने से आत्म-प्रत्यक्ष व मोक्षरूप फल होता है।

अनात्माकार वृत्तियों के निरोधरूप मनोनाश के सहित आत्मकार वृत्तियों का प्रवाह-रूप तत्त्वज्ञान का अभ्यास ही योगाभ्यास है उसके बिना नहीं। किन्तु उक्त योगाभ्यास से ही आत्मसाक्षात्कार व मोक्षफल सुलभ है। वसिष्ठ जी कहते हैं—

श्रद्धा भक्ति ध्यानयोगान्मुमुक्षोर्मुक्तर्हेतून् भक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः।

(विवेक चूड़ामणि ।।46।।

मुमुक्ष के लिए श्रद्धाभक्ति ध्यानयोग यह मुक्ति के हेतु है वेदवाणी साक्षात् कह रही है।

ध्यानावस्थिततद्गतेनमनसा पश्यन्तियंयोगिनः। *(भगवद्गीता)*

परमात्मा के ध्यान में स्थित मन करके योगीजन् जिस आत्मदेव को प्रत्यक्ष करते हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूता नचात्मांन।

ईक्षतेयोगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः।। *(अ. 6/29/ गीता)*

योग से युक्त है अन्तःकरण जिसका वह योगयुक्तात्मा कहलाता है, जिसका कदाचित् भी परिणाम नहीं किन्तु सर्वदा 'सम, समान रहे ऐसा परमात्मा यहाँ समपद का अर्थ है, ऐसे

सम परमात्मा का 'दर्शन, साक्षात्कार होता है जिससे वह समदर्शन: व समदर्शी कहलाता है। ऐसा सर्वत्र 'समदर्शी, परमात्मदर्शी योगयुक्त पुरुष ब्रह्मा आदि पिपीलिका आदि सब भूतों में स्थिति आत्मा को तथा आत्मा में सब भूतों को प्रत्यक्ष करता है।

इस प्रकार उक्त प्रमाणों के द्वारा सिद्ध हो चुका कि योग के बिना आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। समाधि योग के बिना आत्म–साक्षात्कार नही हो सकता। अब और प्रबल प्रमाण दिखलाता हूँ।

नाविरतोदुश्चरिता न्नाशान्तोनासमाहित:।
नाशान्तमानसोवापि प्रज्ञानेनैमाप्नुयात।। *(क. उप. अ. 1।। व. 2।24*

जो पुरुष पाप कर्म से निवृत नहीं हुआ व इन्द्रियों की चंचलता से शान्त नहीं है, व 'असमाहित है, समाधि अवस्था को' प्राप्त नहीं है, वह समाहित हुआ भी सिद्धियों की कामना वाला है, वह मनुष्य इस आत्मा को प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु पापों से निवृत्त शान्त इन्द्रिय सिद्धियों की कामना से रहित समाहित हुआ पुरुष आत्मा को प्राप्त हो सकता है।

स्वयंवेद्यंचतद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखंयथा।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्धोहियथाघटम्।। *(दक्ष स्मृति अ. 7।26।।*

स्वयं जानने योग्य वह ब्रह्म है जैसे कुमारी स्त्री का सुख स्वयं ही जाना जाता है, अयोगी पुरुष ब्रह्म को नही जान सकता, जैसे जन्मान्ध पुरुष नीले पीले घट को नहीं जान सकता।

यह बिल्कुल निश्चय व सिद्ध सिद्धान्त है कि योग के बिना परमगति कदापि नहीं प्राप्त होती है।

नतुयोगमृतेशक्या प्राप्तुं सापरमागति:।
अवबन्धोहिबुद्धस्य कर्मभिर्नोपपद्यते।। *(शान्ति पर्व अ. 33।।52।।*

योग के बिना वह परमपति प्राप्त नहीं हो सकती, जीवन्मुक्ति विद्वान् को कर्मों का बन्धन नहीं होता।

योगमेकंविहायाय मानन्दात्मामहेश्वर:।
नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्योनचक्षुषा।। *(आत्मपुराण अ. 6।।723।।*

आनन्दकंदरूप महेश्वर परमात्मा महाप्रभु एक योग के बिना, न वाक्यों से प्रत्यक्ष हो सका है, न मन से अर्थात् न श्रवन से और न ही चक्षुओं द्वारा प्रत्यक्ष होता है।

निर्विकल्पकसमाधिनास्फुटम् ब्रह्मतत्त्वमवगम्यतेध्रुवम्।
नान्यथाचलतयामनोगते: प्रत्ययान्तरविमिश्रितं भवेत्।।

(विवेक चूड़ामणि ।365।।

निर्विकल्प समाधि द्वारा ब्रह्म तत्व स्फुट प्रत्यक्ष किया जाता है। ''अन्वयान'' निर्विकल्प समाधि के बिना प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि व्युत्थान अवस्था में मन की दशा को चंचल होकर अनात्माकार वृत्तियों से मिश्रित मन होता है।

आचक्ष्वशृणुवातात नाना शास्त्राण्यनेकश:।
तथापितवनस्वास्थ्यं सर्वविस्मरणदृते।।

(अष्टावक्र गीता) ।। प्र. 16।।1।।

हे तात् शिष्य—नाना शास्त्रों को अनेक प्रकार से तुम कथन कर या श्रवण करे तो भी सब के विस्मरण के बिना अर्थात् निर्विकल्प (असंप्रज्ञात समाधि) के बिना तुम्हारा मोक्ष नहीं होगा।

हरोयद्युपदेष्टाते हरिः कमलजोदिवा।
तथा पिनतवस्वास्थ्यं सर्वविस्मरणदृते।। *(अष्टावक्र गीता)* ।।

यदि महादेव भी तेरा उपदेष्टा हो, या विष्णु या ब्रह्मा भी तेरा उपदेष्टा हो तो भी ''सर्व के विस्मरण के बिना'' असम्प्रज्ञात समाधि के बिना तुम्हारा मोक्ष नहीं होगा।

सर्व का विस्मरण असम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में ही होता है, क्योंकि सुषुप्ति अवस्था में भी अज्ञान विषयक तमोगुण विषयक वृत्ति ज्ञान होता ही है।

—क्रमशः

कैवल्य की व्याख्या

तद्वैराग्यात् अपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् योगसूत्र

उसका भी वैराग्य होने से बन्धन—रूपी दोष—बीज का क्षय होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

चित्त के भावों पर विजय प्राप्त होती है और बुद्धि सर्वग्राही बन जाती है, लेकिन इसकी भी अस्मिता मन में रह जाती है। तब यही समझना चाहिए कि दृष्टा मन से पूरा अलग नहीं हुआ, बल्कि मन के साथ एक रूप ही हुआ है। बन्धन तो इसी से है। फिर मोक्ष कैसे मिलेगा? इसलिए दृष्टा को इसका जरा भी भान नहीं रहना चाहिए। दृष्टा केवल अपने स्वरूप में ही रहे, देह की सब सात्विक क्रियाएँ गुण, शक्ति, ज्ञान—ये सब—के—सब प्रकृति के हैं, या तो ईश्वर के है—इस प्रकार का भान उसको अखण्ड रहे, यही मोक्ष है।

हंसविद्या की महत्ता एवं उसकी प्राप्ति के साधन

—श्री पूर्णचन्द पन्त शास्त्री

'हंस' पद परम प्रकाश स्वरूप परमेश्वर का वाचक है। अतः हंसविद्या का अर्थ है—अध्यात्मविद्या। ब्रह्मविद्या एवं योग—विद्या भी इसी के पर्यायवाची हैं। ईश्वर प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले सभी साधनों को शास्त्रों में 'योग' शब्द से अभिव्यक्त किया गया है। योग साधना में हंस मन्त्र का विशेष महत्त्व है, उपनिषदों में हंस–विद्या की महिमा का वर्णन करते हुए यह बात सिद्ध की गई है कि—हंस ही परम वाक्य है।

हंस समस्त वेदों का सार है, हंस परम रुद्र है और हंस ही परमात्मा है, समस्त देवताओं के मध्य में हंस ही परमेश्वर है। हंस की अनुपम ज्योति सभी देवताओं के मध्य में स्थित है। पाशुपत ब्रह्मोपनिषद् में कहा गया है—हंस परमात्मा का स्वरूप है जो कि श्वासों के रूप में जीव के बाहर–भीतर चलता रहता है। भीतर जाने पर अनवकाश वाले स्थान पर यह हंस सुपर्ण (ईश्वर) स्वरूप होता है। हंस का जप ही वर्ण–ब्रह्म है, इसी से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, भीतर से होने वाले प्रणवरूपी नाद से जो हंस विदित होता है वही सब ज्ञान कराने वाला है, प्रणव और हंस में कोई अन्तर नहीं है, प्रणवरूप हंस का अर्न्तध्यान किए बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

अतः योगाभ्यासी साधक को चाहिए कि वह निम्नलिखित विधि से प्रणवरूप 'हंस' की उपासना करे—

प्रकृतिं पुरुषे स्थाप्य पुरुषं ब्रह्मणि न्यसेत्।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रसंख्याय विमुच्यते।।
यः सर्वभूतचित्तज्ञो यस्य सर्वं हृदि स्थितः।
यस्य सर्वान्तरे ज्ञेयः सोऽहमस्मीति चिन्तयेत्।।

अर्थात् प्रकृति (मन, बुद्धि, अहंकार आदि) को पुरुष (आत्मा) में और पुरुष को परमात्मा में अर्पित करके तथा "परम ब्रह्म–मय, अखण्ड ज्योति परमात्मा मैं ही हूँ" इस प्रकार का चिन्तन करता हुआ साधक आत्म–ज्ञान से मोक्ष पा जाता है।

जो प्रभु प्राणिमात्र के चित्तों का ज्ञाता है एवं प्राणिमात्र के हृदय में जिनका निवास है और जो अन्तर्यामी है उनका 'सोऽहं'' भाव से चिन्तन करता हुआ मनुष्य अवश्य कल्याण

का भागी बन जाता है।

हंस विद्या का अधिकारी कौन?

हंसोपनिषद् में एक उपाख्यान आता है। जिसमें गौतम ऋषि जी की जिज्ञासा पर सनत्कुमार जी ब्रह्मविद्या का रहस्य प्रकट करते हुए कहते हैं—

समस्त देहों में यह जीव 'हंस-हंस' जपता हुआ व्याप्त रहता है, जैसे कि—काष्ठ में अग्नि और तिलों में तेल व्याप्त रहता है। इसे जानकर मनुष्य मृत्यु को जीत लेता है, जो व्यक्ति ब्रह्मचारी हो, शान्त हो, जितेन्द्रिय हो और गुरुभक्त हो, उसी के सम्मुख हंस और परमहंस का रहस्य प्रकट करना चाहिए।

यही बात ब्रह्मविद्योपनिषद् में कही गई है। यथा—

एतन्तु परमं गुह्यं एतन्तु परमं शुभम्।
नातः परतरं किंचित् नातः परतरं शुभम्।।
गुरु भक्ताय देवाय नित्यं भक्तिपराय च।
प्रदातव्यनिदं शास्त्र नेतरेभ्यः प्रदापयेत्।।

यह सबसे गुह्य रहस्य है, यही मुख्य शुभ है, इससे आगे और कुछ नहीं है तो इससे बढ़कर कल्याणकारी कुछ भी नहीं है। यह विद्या उसी को देनी चाहिए जो गुरु का सच्चा भक्त हो एवं सदा भक्ति में रहता हो। अन्य किसी को नहीं देनी चाहिए।

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्मविद्याम्।।

श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव को चाहिए कि अपनी शरण में आए हुए ऐसे शिष्य को जिसका चित्त पूर्णतया शान्त हो चुका हो, सांसारिक भोगों में सर्वथा वैराग्य हो जाने के कारण जिसके चित्त में किसी प्रकार की चिन्ता व्याकुलता या विकार नहीं रह गए हों जो तपस्वी हो, स्वाध्यायशील हो तथा जिसने अपने और इन्द्रियों को भली-भांति वश में कर रखा हो, उसे ही उस ब्रह्मविद्या का तत्वपूर्वक उपदेश करना चाहिए, जिससे वह शिष्य नित्य अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तम को जान सके।

हंसविद्या एवं गुरुभक्ति

अनन्य गुरुनिष्ठ सुपात्र शिष्य ही वही अमर विद्या को प्राप्त कर सकता है। उपनिषदों का वचन है—

इतविद्यामृतालोके नास्ति नित्यत्व साधनम्।
यो ददाति महाविद्यां हंसाख्यां पावनी पराम्।।

अस्य वास्यं सदा कुर्यात् प्रज्ञया परया सह।
हंसविद्यामिमां लब्ध्वा गुरुशुश्रूषया नरः।।
आत्मानमात्मना साक्षात् ब्रह्मबुद्या सुनिश्चितम्।
देह जात्यादि सम्बन्धान् वर्णाश्रमसमन्वितान्।।
देहशास्त्राणि चान्यानि पदपांशुमिव त्यजेत्।
गुरुभक्तिं सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः।। *(ब्रह्मविद्योपनिषद्)*

हंसरूपी विद्यामृत के समान संसार में नित्यत्व का (अमर होने का) अन्य कोई साधन है। जो इस हंसरूपी महाविद्या को देता है, उसकी सदैव ज्ञानपूर्वक सेवा करनी चाहिए। साधक का कर्त्तव्य है कि वह गुरुदेव से इस अमर विद्या को प्राप्त करके आत्मा से आत्मा का साक्षात्कार करता हुआ निश्चय ब्रह्म को जानने का प्रयास करे। देह–जाति सम्बन्धी वर्णाश्रम के नियमों तथा वेद और शास्त्रों की उपेक्षा करता हुआ गुरुदेव की श्रद्धापूर्वक सेवा करे। इसी से मनुष्य का सच्चा कल्याण होता है। क्योंकि–

हरिरेव गुरुः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः।

श्रुति में कहा गया है कि गुरु ही साक्षात् ईश्वर है कोई अन्य नहीं है। इसलिए–

श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेतत् तत्संशयो नात्र ततः समस्तम्।
श्रुत्या विरोधे न भवेत्प्रमाणम् भवेदनर्थाय बिना प्रमाणम्।।

श्रुति ने जो कुछ कहा है वह परमार्थ रूप ही है इसमें कोई सन्देह नहीं है। श्रुति–विरोधी कोई बात प्रामाणिक नहीं हो सकती अप्रामाणिक बात अनर्थकारी ही होती है।

अतः कल्याणकामी व्यक्ति को चाहिए कि वह सर्वतोभावेन गुरुचरणों में अनुरक्त रहे। गुरुभक्त साधक ही इस अमर विद्या को प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में अखिल ब्रह्माण्डनायक योगेश्वर श्रीकृष्ण का यह आदेश है–

तद्विद्धि प्राणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

हंस–मन्त्र एवं अजपागायत्री

जीव स्वभाव से ही 'हंस–हंस' इस मन्त्र को जपता रहता है किन्तु इसका उसे अनुभव नहीं होता। अभ्यास पूर्वक किया जाने वाला यही जप कालान्तर में ''सोऽहं'' में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार के जप को अजपा–गायत्री कहा जाता है। उपनिषदों में इस विषय को विस्तार पूर्वक समझाया गया है। यथा–

हकारेण बहिर्याति सकारेणविशेत्पुनः।
हंस–हंसेत्यमु' मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।।

षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्त्राण्येकविंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।। *(योग चूड़ामण्युपनिषद्)*

प्राणवायु हंकार ध्वनि से बाहर आता है और सकार ध्वनि से भीतर जाता है। इस प्रकार जीव सदैव 'हंस-हंस' इस मन्त्र का जाप करता रहता है। इस प्रकार वह एक दिन रात्रि में 21600 मन्त्र जपता है।

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।
अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशोः जपः।
अनया सदृशं पुण्य न भूतो न भविष्यित।।

इसका नाम अजपा गायत्री है, जो योगियों को मोक्ष प्रदान करती है। इसके संकल्प मात्र से ही सब पापों से छुटकारा मिल जाता है। इसके समान अन्य कोई विद्या नहीं है, इसके समान कोई जप नहीं है और इस जैसा पवित्र ज्ञान न अब तक हुआ है और न होगा ही।

कुण्डलिन्या समुद्भूता, गायत्री प्राणधारिका।
प्राणविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्।।

कुण्डलिनी से उत्पन्न हुई यह गायत्री प्राणधारिणी प्राणविद्या है, जो इसको जानता है, वही वेदों का जानने वाला है। इसलिये कहा गया है—

हंसविद्या मृतालोके नास्तिनित्यत्वसाधनम्।

—मानव का दानव होना उसकी हार है। मानव का महामानव होना उसका चमत्कार है। मानव का मानव होना ही उसकी जीत है।

—डॉ. राधाकृष्णन

—हमारे जीवन का प्रत्येक अगला दिन, पिछले दिन से कुछ ऐसे ढंग का हो जिससे हमने कुछ सीखा हो।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

नाड़ीचक्र और सूर्य

—श्री रामनारायण त्रिपाठी

'नाड़ीचक्र और सूर्य' इस निबन्ध में सर्वप्रथम नाड़ीचक्र और सूर्य का परिचय देना अत्यन्त अपेक्षित है। तदनन्तर इनके पारस्परिक सम्बन्ध, प्रभाव तथा फल विचारणीय हैं।

मानव–शरीर में पत्तों की अति सूक्ष्म शिराओं की भाँति नाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार बतायी गयी है। ये नाड़ियाँ लिंग के ऊपर और नाभि के नीचे स्थित कन्द से–जिसे मूलाधार कहते हैं–निकलकर सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हैं। इनमें बहत्तर नाड़ियाँ मुख्य हैं। मूलाधार में स्थित कुण्डलिनीचक्र के ऊपर तथा नीचे दस–दस नाड़ियाँ और तिरछी दो–दो नाड़ियाँ हैं। ये सभी नाड़ियाँ चक्र के समान शरीर में स्थित होकर शरीर तथा वायु के आधार हैं। इनमें दस नाड़ियाँ प्रधान हैं तथा अन्य दस नाड़ियाँ वायु–वहन करने वाली हैं। प्रधान दस नाड़ियों के नाम–इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी हैं। इनमें प्रथम तीन–इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा सर्वोत्तम नाड़ियाँ हैं जो प्राण मार्ग में स्थित हैं। मेरुदण्ड या शरीर के वाम भाग में अथवा वाम नासारन्ध्र में इड़ा और दाहिनी ओर पिंगला और बीच में सुषुम्णा रहती है। इसके अतिरिक्त बायीं आँख में गान्धारी, दाहिनी में हस्तिजिह्वा, दक्षिण कान में पूषा, बाँये कान में यशस्विनी, मुख में अलम्बुषा, लिंग में कुहू, गुदा में शंखिनी स्थित है। शरीर के दस द्वारों पर ये दस नाड़ियाँ हैं।

इन नाड़ियों में इड़ा नाड़ी में चन्द्र, पिंगला में सूर्य और सुषुम्णा में शम्भु या अग्नि स्थित अथवा क्रम से इन तीनों नाड़ियों के चन्द्र, सूर्य और अग्नि या शम्भु देवता हैं। बायीं (इड़ा) नाड़ी का परिचायक चन्द्र शक्तिरूप से तथा दाहिनी पिंगला नाड़ी का प्रवाहक सूर्य शंकररूप से रहते हैं। जो लोग चन्द्र–सूर्य नाड़ी का सर्वदा अभ्यास करते हैं, उन्हें त्रैकालिक ज्ञान स्वाभाविक होता है। इन नाड़ियों के स्वर से शुभाशुभ, सिद्धि–असिद्धि का ज्ञान किया जाता है। जैसे यात्रा में इड़ा तथा प्रवेश में पिंगला शुभ है। चन्द्रनाड़ी श्वेत, राम, शीत, स्त्री तथा सूर्यनाड़ी असित, विषम, उष्ण पुरुष है। शुभ कर्म में चन्द्र नाड़ी तथा रौद्रकर्म में सूर्यनाड़ी प्रशस्त है। इनकी गति क्रम यों है–

शुक्लपक्ष में प्रथम तीन दिन तक चन्द्र नाड़ी चलती है, इसके अनन्तर तीन दिन सूर्य नाड़ी चलती है। इस क्रम से शुक्लपक्ष में नाड़ी–संचालन होता है और कृष्णपक्ष में पहले

तीन दिन सूर्य–स्वर अर्थात् दाहिनी नाड़ी का उदय होता है, अनन्तर चन्द्र नाड़ी का। इस प्रकार प्रत्येक दिन में भी इन दोनों नाड़ियों का प्रवाह होता रहता है।

वास्तव में नाड़ी चक्र तब तक नहीं समझा जा सकता है, जब तक उसको संचालित करने वाली चित्–शक्ति का स्वरूप न समझ लिया जाये। वह चित्–शक्ति कुण्डलिनी है, जिसे आधार शक्ति कहते हैं। उसके बोध के बिना योग के सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। कहा गया है कि सोयी हुई कुण्डलिनी जब गुरु–कृपा से जग जाती है, तब सारे चक्र खिल जाते हैं और ब्रह्म–ग्रन्थि, विष्णु–ग्रन्थि तथा रुद्र–ग्रन्थि–ये तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं–

सुप्ता गुरुप्रसाद देन यदा जागर्ति कुण्डलिनी।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यंते ग्रंथयोऽपि च।। *(ह. यो. प्र. 3/2)*

जब गुरु–कृपा से जागृत कुण्डलिनी ऊपर की ओर उठती है तो वह शून्य पदवी अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी प्राणवायु के लिये राजपथ बन जाती है। जैसे राजा राजमार्ग से सुख से निकलता है, वैसे प्राण–वायु सुषुम्ना नाड़ी में सुख से चली जाती है। उस समय चित्त निरालम्ब हो जाता है और योगी को मृत्यु भय नहीं होता है। सुषुम्ना नाड़ी की तन्त्रशास्त्र में बहुत ही महिमा गायी गयी है। शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमार्ग–ये सब सुषुम्ना के पर्यायवाची शब्द हैं।

हठयोग–प्रदीपिका में कहा गया है कि दंड से ताड़न करने पर जैसे सर्प अपनी कुटिलता छोड़ देता है, वैसे 'जालन्धर–बन्ध' लगाकर वायु को सुषुम्ना नाड़ी में धारण करने पर कुण्डलिनी भी सीधी हो जाती है। उसी समय इड़ा और पिंगला का आश्रय करने वाली मरण–अवस्था प्राप्त हो जाती है अर्थात् कुण्डलिनी के बोध हो जाने पर सुषुम्ना नाड़ी में प्राणों का प्रवेश हो जाता है और इड़ा एवं पिंगला नाड़ी से प्राणों का वियोग हो जाता है। इसी को योगी लोग मरण–अवस्था कहते हैं, कुण्डलिनी के सम्पीडन के लिये महामुद्रा का विधान है। इस महामुद्रा को आदिनाथ आदि महासिद्धों ने प्रकट किया है। इससे पांच महाक्लेश–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि शोक–मोह नष्ट हो जाते हैं।

इस महामुद्रा में इड़ा और पिंगला अर्थात् सूर्य और चन्द्र नाड़ी की प्रमुख भूमिका होती है। शरीर के दक्षिण भाग में पिंगला और वाम भाग में इड़ा रहती है। पिंगला दाहिनी फेरे से और इड़ा बायें फेरे से रहती है।

इड़ावामे चविज्ञेया पिंगला दक्षिणे स्मृता। *(शि. स्व. 49)*

शरीर में बायीं ओर रहने वाली इड़ा नाड़ी अमृतरूप होने के कारण संसार को पुष्ट करने वाली होती है और पिंगला अर्थात् सूर्य नाड़ी जो दक्षिण भाग में रहती है, सदा संसार को उत्पन्न करती है–विशेष रूप से उत्पत्ति का कार्य सूर्य नाड़ी का है।

हठयोग–प्रदीपिका में सुषुम्ना नाड़ी की तुलना मेरु से की गयी है। उसमें सोमकलारस प्रवाहित होता है। मेरु के तुल्य सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में स्थित सोमकला के रस को तालु विवर में रखकर रजोगुण, तमोगुण से अनभिभूत सत्त्वगुण में वृद्धि को रखने वाला जो विद्वान् पुरुष आत्मतत्त्व को कहता है, वह नदियों का अर्थात् इडा, पिंगला, सुषुम्ना तीनों नाड़ी स्वरूप गंगा, यमुना, सरस्वती का मुख है। उसमें चन्द्र से शरीर का सार झड़ता है। गोरक्षनाथ जी ने कहा है कि नाभि देश में अग्नि रूप सूर्य स्थित है और तालु के मूल में अमृतरूप चन्द्रमा स्थित है। जब चन्द्रमा नीचे की ओर मुख करके अमृत बरसाता है, तब सूर्य उसको ग्रस लेता है। 'इसलिये हठयोग–प्रदीपिका में कहा गया है कि योगी को ऐसी मुद्रा करनी चाहिए, जिससे अमृत व्यर्थ न जाये। विपरीतकरणी' मुद्रा में ऊपर नाभि वाले तथा नीचे तालु वाले योगी के ऊपर सूर्य और नीचे चन्द्रमा रहते हैं–

ऊर्ध्वन मेरु धस्तालोरूर्ध्वे भानुरधः शशी। *(ह. यो. 3/79)*

लिंग–शरीरस्थ मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्म–नाड़ी में अनेक चक्रों की कल्पना की जाती है। कोई 32 चक्रों को तथा दूसरे 9 चक्रों 'नव–चक्रमयों देहः' (भा. उ.) को अन्य छः चक्रों को मानते हैं। इन छः चक्रों का नाम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अन हत, विशुद्ध और आज्ञा है तथा स्थान योनि, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य है। इन्हें षट्कमल भी कहते हैं जिनमें क्रमशः 4, 6, 10, 12, 16 और 2 दल होते हैं। ये दल विविध वर्णों के होते हैं तथा प्रत्येक दल पर मातृका के एक–एक वर्ण विद्यमान है। प्रत्येक चक्रपर चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, पूर्णचन्द्राकार, लिंगाकार यन्त्र है, जो पाँच महातत्त्व पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और महातत्त्व के द्योतक हैं। इन चक्रों के विविध ग्रन्थों के आधार से भिन्न–भिन्न कई अधिष्ठान और देवाधिपति हैं। ये चक्र नाड़ी पुञ्ज ही हैं, अन्य कोई वस्तु नहीं है—ऐसा विद्वानों का मत है। इस दृष्टि से वायुतत्त्वाधिपति होने के कारण तथा नाड़ी–पुञ्ज के कारण इन चक्रों से भी सूर्य का आन्तरिक और बाह्य सम्बन्ध सुनिश्चित है। ऐसी शास्त्रीय उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं–

पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्।
त्रिखण्डंमातृका चक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्।।

याज्ञवल्क्य–संहिता में सूर्य–ज्योति को ही जीव तथा हृदयाकाश का प्रकाशक माना गया है। सूर्य–ज्योति ही बाह्याभ्यन्तर की प्रकाश–यिकी है।

इसके अतिरिक्त आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायामों में सर्वप्रथम सूर्यभेदन प्राणायाम है। सूर्यभेदन प्राणायाम में सूर्य नाड़ी से अर्थात् पिंगला से बाहर वायु को खींचने का विधान है। इस प्रकार से प्रतिदिन पाँच–पाँच संख्या से प्राणायामों को बढ़ाते हुए अस्सी दिन तक करने

के बाद अन्य कुम्भकों का अधिकारी होता है।

प्राणतोषिणीतन्त्र और योगशिखोपनिषद् के अनुसार हठयोग को सूर्य और चन्द्र का अर्थात् प्राण और अपानका ऐक्य कहा गया है। सूर्य नाड़ी प्राण तथा चन्द्र नाड़ी को अपान बताया गया है। प्राण अपान की एकता प्राणायाम ही हठयोग है–

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणेन्दुरुच्यते।
सूर्यचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते।।

कुण्डलिनी जब उद्बुद्ध होती है तो क्रम से नाद और प्रकाश होता है। प्रकाश का ही व्यक्त रूप बिन्दु है। नाद से जायमान बिन्दु तीन प्रकार का है–इच्छा, ज्ञान और क्रिया–जिसको योगी लोग पारिभाषिक रूप में सूर्य, चन्द्र और अग्नि कहते हैं तथा कभी–कभी ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी कहते हैं। कुछ लोग शरीर के आधे भाग को सूर्य और आधे भाग को चन्द्र भी कहते हैं। इन दोनों को मिलाकर सुषुम्ना में केन्द्रित करना योगी का लक्ष्य मानते हैं।

उपर्युक्त बातों से सूर्य और नाड़ीचक्र का सम्बन्ध निश्चित हो गया। अब यह विचारणीय है कि शरीरस्थ नाड़ीचक्र से आभ्यन्तर सोम–सूर्य का सम्बन्ध है या बाह्य सोम–सूर्य का यह विचार इसलिये उपस्थित है कि योग–शास्त्र में कहा गया है–'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' जो पिण्ड (शरीर) में है, वही ब्रह्माण्ड में है। यथार्थतः यह शरीर ही ब्रह्माण्ड है। दूसरे शब्दों में शरीर को ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति कह सकते हैं। ईश्वर ने विश्व की रचना करके मनुष्य–शरीर को ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति बना कर उसमें अपने ज्ञान का समावेश किया, ताकि मनुष्य अपने में ही विश्वस्थित पदार्थ के ज्ञान को सहज में जान सके और भोग सके–उसको एतदर्थ अन्यत्र जाना न पड़े।

इस शरीर में चतुर्दश भुवन, सप्तद्वीप, सप्तसागर, अष्टपर्वत, सर्वतीर्थ, सब देवता, सूर्यादि ग्रह और सब नदियाँ आदि पदार्थ भिन्न–भिन्न स्थानों पर विद्यमान हैं। इसका विस्तृत विवरण शिवसंहिता द्वितीय पटल, शाक्तानन्दतरंगिणी, निर्वाणतन्त्र, तत्त्वसार, प्राणतोषिणी तन्त्र आदि ग्रन्थों में दिया गया है। उद्धरण के रूप में कुछ वाक्य नीचे लिखे जा रहे हैं।

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः।।
ऋषयो मुनयः सर्व नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः।।
सृष्टिसंहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।

नमो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथिवी तथैव च।।
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।

(शि. सं. 2/1–4)

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं श्रृण्विदानीं प्रयत्नतः।
पातालभूधरा लोकास्तथान्ये द्वीपसागराः।
आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्येव्यवस्थिताः।
पिण्डमध्ये तु तान् ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।

इसके अतिरिक्त शरीरान्तर्गत सुषुम्ना विवरस्थ पंच–व्योमों में पाँचवां सूर्यव्योम भी है, जिसकी चर्चा मण्डलब्राह्मणोपनिषद् आदि ग्रन्थों में सफल और सविधि की गयी है। अतः यह सिद्ध है कि शरीरस्थ सूर्य है और उसका नाड़ी–चक्रों से निश्चित सम्बन्ध है।

बाह्य सूर्य प्रत्यक्ष एवं विदित हैं, उनका परिचय देना आवश्यक है। वे अपने रश्मि–रूपी करों से पूरे ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित हैं। उनसे असम्बद्ध चराचर जगत् का कोई भी पदार्थ नहीं है। शरीर और शरीरस्थ नाड़ियों से उनका आधिदैविक सम्बन्ध है। जिस प्रकार सांसारिक सम्पूर्ण पदार्थों के अधिष्ठान देव भिन्न–भिन्न होते हैं, उसी प्रकार शरीरावयवों तथा शारीरिक सकल पदार्थों के भी भिन्न–भिन्न अधिष्ठान–देव हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर बाह्य सूर्य से भी शरीर का सम्बन्ध निश्चित है तथा उसके अनुसार उपास्य–उपासक–भाव भी सिद्ध है। पार्थिव वनस्पतियों, औषधों, अन्नों और जीवों के जीवन से सूर्य और चन्द्र का विशेष सम्बन्ध है। इन्हीं के द्वारा उनकी प्राणन, विकसन, वर्धन और विपरिणमन आदि क्रियायें होती हैं। वास्तव में सूर्य स्थावर–जंगम सम्पूर्ण जगत के आत्मा हैं।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। *(ऋ. 1/115/1)*

सूर्यतापिनी–उपनिषद् में सूर्य को सर्वदेवमय कहा गया है–

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः।। *(1/6)*

अधिष्ठान–सम्बन्ध तथा उपास्य–उपासक–भाव के द्वारा शरीर का सूर्य के साथ सर्वात्मना सम्बन्ध होने पर भी नाड़ी–चक्र से उनका क्या सम्बन्ध है–इस परिप्रेक्ष्य में विचारणीय यह है कि वैदिककाल से चली आ रही उपासना–पद्धति में विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश–इन पंचदेवों की उपासना प्रधान है, क्योंकि ये पंचदेव पंचतत्त्वों के अधिपति हैं। आकाश के विष्णु, तेज की शक्ति, वायु के सूर्य, पृथ्वी के शम्भु और जल के गणेश अधिपति हैं।

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः।।

वायु–तत्त्व के अधिपति सूर्य बाह्य वायु तथा शरीरान्तरसञ्चारी प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि वायुओं के अधिपति हैं। इन प्राण आदि वायुओं का संचरण तथा बाह्य वायु का ग्रहण एवं दूषित वायु का त्याग शरीर में नाड़ियों के द्वारा ही होता है। अतः नाड़ियों से सूर्य का सम्बन्ध निर्विवाद सिद्ध है। सूर्य वायु द्वारा सबका प्राणन करते हैं। अतः वे जगत के आत्मा माने गये हैं और पंच–देवों में एक विशिष्ट देव भी कहे गये हैं। पूर्वोक्त विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि नाड़ीचक्र से सूर्य का आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक–इन तीनों प्रकार का सम्बन्ध है, इसलिये सूर्य की उपासना आवश्यक है। विशेषतः नेत्र–रोगी, चर्मरक्तरोगी, वात–रोगी तथा शत्रु पीड़ित के लिए परम लाभकारी है।

यौगिक क्रियाओं के लिए तो सूर्य–सम्बन्ध ज्ञान अत्यन्त अपेक्षित है, क्योंकि जब तक चन्द्र–सूर्य और शम्भु–नाड़ियों की गति–शक्ति का नियमन नहीं होगा, तब तक मुक्तिरूपा कुण्डलिनी का प्रबोधन करना असम्भव है। उक्त तीनों नाड़ियों तथा कुण्डलिनी का वेत्ता ही योगवित् एवं योगशास्त्रवित् है। योग–शास्त्रियों की दृष्टि में इस कुण्डलिनी के प्रबोध के पूर्व मानव एवं पशु में कोई तात्त्विक भेद नहीं रहता।

यावत् सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा। *(घेरण्डसंहिता 3/50)*

नाड़ीचक्र से सूर्य का सम्बन्ध होने के कारण बाह्योपासना की भाँति आन्तरोपासना परमावश्यक है।

सूचना

जय गुरुदेव,

जिन ग्राहकों ने वर्ष 2020 व 2021 का शुल्क नहीं दिया है वे लोग 200/– रु. बैंक में जमा करें।

नाम–दास लाल ब्रह्मचारी व विनोद कुमार

A/c No. 0371101018253

I F S C– CNRB 0000371

CANARA BANK, ETMADPUR, AGRA

जीवन का सनातन प्रश्न

प्राय: सभी मनुष्यों के जीवन में किसी न किसी समय ये प्रश्न आये बिना नहीं रहते कि 'मैं कहाँ से आया हूँ ?' और 'कहाँ जाऊँगा ?'- **'कोऽहं कुत आयात:'**। बात स्पष्ट है कि अनभिज्ञ लोग या अल्पज्ञलोग इन प्रश्नों को टालने का प्रयत्न करते हैं। अधिकांश विद्वान् लोग विचार करके थक जाते हैं और उत्तर शायद ही पाते हैं। ये प्रश्न सनातन हैं और खोज भी पुरातन ही है। जगत्सृष्टि के समय से यह खोज सभी देशों में और सभी मतों तथा सभी दर्शनों में की जा रही है। विभिन्न मतवाले लोग परलोक तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार भी प्रदर्शित करते रहे हैं। इन सब विचारों पर परामर्श किये बिना अपने-अपने आध्यात्मिक सिद्धान्त का स्थापित करना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य है।

कठोपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता का बीज-प्रश्न भी यही है। अन्यान्य उपनिषदों में, पुराणों में और दर्शन ग्रन्थों में भी इस विषय पर [illegible] चर्चा आयी है। यह ठीक ही है; क्योंकि पुनर्जन्म परलोक सम्बन्धी चर्चा के बिना अध्यात्म विचार हो ही नहीं सकता। कठोपनिषद् में-

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
तद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीय:॥

(1/1/20)

यह जो प्रश्न अधिकारी शिष्य नचिकेता ने गुरु ब्रह्म विद्याचार्य वैवस्वत यम से किया, वह प्रश्न सनातन ही है। गीता का द्वितयाध्याय, जो गीता का हार्द है और जिसमें अर्जुन के मुख्य प्रश्न का उत्तर आया है, वह सम्पूर्णत: कठोपनिषद् पर ही आधारित है। दोनों में **'नायं हन्ति न हन्यते'** इत्यादि कई सिद्धान्त-वाक्य समान रूप से उपलब्ध होते हैं, यह बात विद्वानों को विदित ही है।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 AUGUST 2020

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्धया तृणमिव यः समवैति वै परस्वम्।
भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम्।।

जो एकान्त में पड़े हुए दूसरे के स्वर्ण को देखकर भी उसे अपनी बुद्धि के द्वारा तृण के समान समझता है और निरन्तर भगवान् का अनन्य भाव से चिन्तन करता है उस नर श्रेष्ठ को तुम विष्णु का भक्त जानो।

संस्थापक :—योगमार्गेश्वर अनन्तश्री पन्टमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14560 सम्पादक : आचार्य व. (डॉ.) रामलाल शर्मा